॥ श्रीहरिः ॥
510
असीम नीचता और असीम साधुता
(पढ़ो, समझो और करो)
गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR
गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

510

असीम नीचता और असीम साधुता

(पढ़ो, समझो और करो)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

वर्षों पहले 'कल्याण' मासिक पत्रमें 'पढ़ो, समझो और करो' स्तम्भके अन्तर्गत प्रकाशित प्रेरक, सत्य घटनाएँ सर्वसाधारण-द्वारा अत्यधिक पसन्द की गयी थीं। उनकी अत्यधिक माँग, लोकप्रियता और सार्वजनिक महत्त्वको ध्यानमें रखकर वे इससे पूर्व पुस्तकाकार बारह भागोंमें प्रकाशित हो चुकी हैं। उन्हीं बारह भागोंको विभिन्न नाम-शीर्षकोंमें बाँटकर अब कुल ९ भागोंमें प्रकाशित किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक पूर्व प्रकाशित—'पढ़ो, समझो और करो' का परिष्कृत रूप है। ऑफसेटकी स्वच्छ, सुन्दर छपाईसे युक्त इस पुस्तकमें आम लोगोंके जीवनमें घटित सच्ची घटनाओं तथा उनके द्वारा प्रेषित शिक्षाप्रद प्रेरक प्रसंगों और अनुभूत नुस्खों तथा प्रयोगोंका संकलन है।

भगवद्विश्वासको बढ़ानेमें सहायक एवं चरित्रकी ऊँचाइयोंको रेखांकित करनेवाली इस पुस्तककी सामग्री गृहस्थ, विरक्त, जिज्ञासु और साधक—सभी वर्गके पाठकोंके लिये उपयोगी, प्रेरणाप्रद और आत्म-विश्लेषण करनेमें सहायक है। अधिकाधिक लोगोंको इससे विशेष लाभ उठाना चाहिये।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय पृष्ठ-संख्या

॥ श्रीहरिः ॥

असीम नीचता और असीम साधुता

कुछ वर्ष पहलेकी बात है। एक सनातनधर्मी सदाचारी पुराने विचारोंके घरकी लड़कीका विवाह भाग्यवश एक कॉलेजसे निकले मनचले अविवेकी लड़केसे हो गया। लड़की सुन्दर थी, पढ़ी-लिखी भी थी, घरका सारा कामकाज करनेमें निपुण थी। सास-जेठानी—सबकी आज्ञा मानती, घरमें सबके साथ आदर-सम्मानका बर्ताव करती तथा सबको प्रसन्न रखती थी। प्राणपणसे स्वामीके संकेतके अनुसार चलना चाहती और चलती भी थी। परंतु उसमें (पतिके भावनानुसार) पाँच दोष थे—वह प्रतिदिन भगवान्‌के चित्रकी पूजा करती, मांस-अण्डे नहीं खाती, पर पुरुषोंका स्पर्श नहीं करती, बुरी-गन्दी पुस्तकें नहीं पढ़ती और सिनेमा नहीं जाती। ये पाँचों बातें वह अपने नैहरसे सीखकर आयी थी और उसके स्वभावगत हो गयी थीं। पति भी उसको वैसे ही मानता, पर यही पाँच बातें ऐसी थीं जो पतिको बड़ी अप्रिय थीं और वह बार-बार इनके लिये पत्नीको समझाता। वह पहले-पहल तो इन बातोंके दोष बतलाती, समझाना चाहती, पर इससे पतिदेवके क्रोधका पारा बहुत चढ़ जाता। वह समय-समयपर निर्दोष बालिकाको मार भी बैठता। गाली-गलौज बकना—उसके माँ-बापको बुरा-भला कहना, डाँटना-डपटना तो प्रायः रोज ही चलता था। इसलिये उसने समझाना तथा दोष बतलाना तो छोड़ दिया। वह जान गयी कि ये इन बातोंको अभी माननेवाले नहीं हैं। अतः वह विरोध न करके बड़ी नम्रतासे इन्हें माननेमें अपनी

असमर्थता प्रकट करने लगी। बहुत कहा-सुनी होनेपर उसने पतिके साथ सिनेमा जाना तो स्वीकार कर लिया; परंतु शेष चार बातें नहीं मानीं। उसने बड़े नम्र शब्दोंमें, परंतु दृढ़ताके साथ कह दिया कि 'मेरे प्राण भले ही चले जायँ, मैं न तो भगवान्‌की पूजा छोड़ सकती हूँ, न मांस-अण्डे खाना, पर पुरुषोंको स्पर्श करना और गन्दी पुस्तकें पढ़ना ही स्वीकार कर सकती हूँ।' इसपर उसके पतिदेवता बहुत ही नाराज हो गये; क्योंकि वह अपनेको आजकलके आगे बढ़े हुए लोगोंमेंसे मानता था। उसकी प्रगतिके क्षेत्रमें पत्नीकी ये चारों चीजें अनावश्यक थीं। अतः वह ऐसी पिछड़ी हुई स्त्रीसे अपना विवाह होनेमें बड़ा अभाग्य मानने लगा तथा उसके साथ बड़ा दुर्व्यवहार करने लगा।

कई वर्ष यों बीते। उसका द्वेष बढ़ता गया और उसमें घोर पापमूलक हिंसावृत्ति पैदा हो गयी। एक दिन दोपहरको किसी ट्रेनसे कहीं जानेका प्रोग्राम बना। पहले दर्जेकी दो टिकटें खरीदी गयीं। पत्नीको लेकर बाबू साहेब ट्रेनमें सवार हुए। उन दिनों भीड़ कम होती थी। पहले दर्जेके एक खाली डिब्बेमें पत्नीको लेकर वह बैठ गया।

कुछ दूर जानेपर जब गाड़ी वेगसे जा रही थी—उसने डिब्बेका फाटक खोला और किनारेकी सीटपर बैठी हुई पत्नीको धक्का देकर बाहर गिरा दिया। मनमें पहलेसे ही योजना बनायी हुई थी। इसीसे पत्नीको दरवाजेके पासकी सीटपर उसने बैठाया था। बेचारी अकस्मात् धक्का खाकर नीचे गिर पड़ी। भाग्यसे बगलके डिब्बेके एक सज्जन बाहरकी ओर सिर निकाले कुछ देख रहे थे। उन्होंने एक तरुणी स्त्रीको गिरते देखकर जंजीर

खींची; जंजीरमें कुछ जंग लगा था, इससे उसके पूरा खींचनेमें कुछ देर लग गयी। इतनेमें गाड़ी दो-तीन मील आगे बढ़ गयी।

गाड़ी रुकी। उस बाबूने सोचा था, मर गयी होगी। कह दिया जायगा—'खिड़की अकस्मात् खुल गयी, वह खिड़कीके सहारे किसी कामसे खड़ी थी, अचानक गिर पड़ी।' पर गाड़ी रुकते ही अपने पापसे उसका हृदय काँप गया। आस-पासके लोग इकट्ठे हो गये। गार्ड आया। उसने रोनी सूरत बनाकर सोची हुई बात गार्डसे कह दी। गाड़ी उलटी चलायी गयी। वहाँ पहुँचनेपर देखा गया—वह मरी तो नहीं है, पर चोट बहुत जोरसे लगी है। उसको जीती देखकर इसका बुरा हाल हो गया। सोचा, अब यह असली बात कह ही देगी और इससे लेनेके देने पड़ जायँगे। उसका शरीर काँपने लगा; आँखोंसे अश्रुओंकी धारा बह निकली। लोगोंने समझा, पत्नीके बुरी तरह घायल हो जानेके कारण यह रो रहा है। लोग उसे समझाने लगे। लड़कीको गाड़ीपर चढ़ाया गया। बड़ा स्टेशन आनेपर उसे उतारकर अस्पताल पहुँचानेकी व्यवस्था की जाने लगी। पर उसे मरणासन्न देखकर उसे मैजिस्ट्रेटको उसके आखिरी बयानके लिये बुला लिया। उसका पति तो अपने भविष्यकी दुर्दशाको सोचता हुआ अलग बैठा रो रहा था; समीप आनेकी भी उसकी हिम्मत नहीं थी। मैजिस्ट्रेटने आकर लड़कीका बयान लिया। उसने कहा—'साहेब! मुझे मिर्गीका पुराना रोग था, मैं लघुशंकाको गयी थी। लौटकर कुल्ला करने जा रही थी, इतनेमें मिर्गीका दौरा आ गया। फाटक खुला था, मैं बेहोशीमें नीचे गिर पड़ी और मुझे चोट लग गयी।' मैजिस्ट्रेटने घुमा-फिराकर पूछा—'तुम्हारे पतिने

तो धक्का नहीं दिया न?' वह रोते-रोते बोली—'राम-राम! वे बेचारे धक्का क्यों देते, वे तो इस समय बहुत दुःखी होंगे। उन्हें बुलाइये मैं उनके आखिरी दर्शन करके चरणोंमें प्रणाम कर लूँ।'

इस बीच वह समीप आ गया था। वह यह सब सुनकर दंग रह गया और उसके हृदयमें एक महान् वेदना पैदा हो गयी। डरके बदले पश्चात्तापकी आग जल उठी। 'हाय! कहाँ मैं घोर नीच, कहाँ यह परम साध्वी, जो इस मरणासन्न अवस्थामें भी सावधानीके साथ मुझ नीचको बचा रही है।' वह चीख उठा। लोगोंने खींचकर समीप कर दिया। लड़कीने उसको देखा, चरण छुए और वह सदाके लिये चल बसी!

उस युवकके जीवनमें महान् परिवर्तन हो गया। वह इन सारे दुर्गुणोंको छोड़कर साधुस्वभाव हो गया। उसने इस पापका प्रायश्चित्त करनेके लिये पुनः विवाह न करके ब्रह्मचारी-जीवन बितानेका निश्चय किया। उसीने यह सब बातें लोगोंको बतायीं। छः महीने बाद ही वह लापता हो गया। इस समय पता नहीं, कहाँ—किस अवस्थामें है। इस घटनासे बहुत कुछ सीखा-समझा जा सकता है।

—रामेश्वरप्रसाद सिंह

सद्व्यवहारसे अपराधी भी बदल सकते हैं

हम जिनको 'दादाजी' के रूपमें पहचानते हैं, ऐसे एक सज्जनके साथ मुझे पंढरपुर जाना पड़ा। उनके हमेशाके ठहरनेके स्थानपर हम ठहरे थे। दूसरे दिन हम नदीपर स्नान करने गये और भीगे कपड़ेसे विठोबाके दर्शन कर अपने निवास-स्थानपर वापस लौट आये। कपड़े बदलते समय दादाजीको पता चला कि उनकी कीमती घड़ी और 'पार्कर' पेन कहीं गुम हो गयी। दादाजीने वहाँके निवास-स्थानके व्यवस्थापकको इस घटनाकी जानकारी देनेके अलावा और कुछ नहीं किया। जैसे कुछ भी न हुआ हो, ऐसे स्वस्थ-चित्तसे दादाजीने अपना काम किया और हम बम्बई लौटनेके लिये स्टेशनपर आये।

हम सब स्टेशनपर वेटिंग रूममें बैठे थे कि प्लेटफार्मपर घूमनेवाले एक गृहस्थकी ओर दादाजीका ध्यान गया। उनकी जेबमें अपने पार्कर पेन-जैसी पेन देखकर दादाजी लिखनेके बहाने अपनी डायरी खोलकर संदेह मिटानेके लिये उस गृहस्थके पास पहुँचे और लिखनेके लिये उन्होंने विनयपूर्वक पेनकी माँग की। दादाजीका संदेह सही निकला। उस पेनपर उनका नाम लिखा हुआ था। उन्होंने सभ्यतापूर्वक उस गृहस्थको बताया कि पेन उनकी है और पूछा कि 'यह पेन आपके पास कैसे पहुँची?' उस गृहस्थने कहा—'पेन आपकी है तो आप ले लीजिये।'

दादाजीने पेन अपने होनेका सबूत दिया। उस गृहस्थने बताया कि यह पेन उन्होंने सुबह एक लड़केसे पंद्रह रुपयेमें खरीदी थी।

दादाजीने तुरंत उनको पंद्रह रुपये गिनकर दे दिये। पेन वापस मिली, अब तो शायद घड़ी भी मिल जायगी; ऐसा सोचकर और उन गृहस्थको भी हमारी गाड़ीमें ही जाना था तो उनको भी अपने साथ वहाँके निवास-स्थानपर आनेके लिये विनती की। वहाँ पहुँचकर व्यवस्थापकको सब बातें बतायी गयीं। उन्होंने सब नौकरोंको बुलाया। हमारे साथ आये हुए गृहस्थने उन सबमेंसे एक लड़केको पहचानकर कहा कि इसीने सुबह पेन बेची थी।

लड़केसे पूछताछ करनेपर उसने कबूल किया और घड़ी किसको बेची थी, यह भी बताया। थोड़ी कठिनाईसे घड़ी भी मिल गयी। खरीददारद्वारा लड़केको दी हुई रकम दादाजीने उसको चुकताकर घड़ी वापस ली। अठारह वर्षके इस छोकरेसे चोरी करनेका कारण पूछा तो करुणाभरी आवाजमें रोते-रोते उसने बताया कि उसकी बूढ़ी माँ बहुत बीमार है और डॉक्टर तथा दूधवालेकी रकम समयपर न चुका सकनेपर उसकी माँका इलाज रुक जायगा, इस डरसे उसने घड़ी और पेनकी चोरी की!

लड़केकी बातकी सचाई जाननेके लिये हम उसके घर गये। रास्तेमें लड़केने दादाजीसे प्रार्थना की कि इस घटनाके बारेमें उसकी माताजीसे कृपया कुछ न कहें; क्योंकि इसे सुनकर उसके मनको धक्का पहुँचेगा और इसके कारण शायद उसकी मृत्यु भी हो जाय! हम उसके घर पहुँचे तो देखा कि सचमुच ही उसकी जीर्णकाय बूढ़ी माँ बहुत बीमार थी।

दादाजीने सब तरहसे पूछताछ करके उस लड़केको पचीस रुपये देकर उसकी माँका इलाज चालू रखनेके लिये कहा। उन्होंने

पंढरपुरमें रहनेवाले अपने एक मित्रसे उस लड़केका परिचय करा दिया ताकि यदि कोई तात्कालिक सहायताकी आवश्यकता हो तो मिलती रहे। अन्तमें दादाजीने अपना बम्बईका पता उसको देकर कहा— 'माताजीके ठीक होनेपर तुम बम्बई आकर मुझसे मिलना।'

कुछ दिनोंमें उस लड़केकी माँकी मृत्यु होनेपर वह बम्बई आकर दादाजीसे मिला। दादाजीने उसे अपने पास नौकरी दी। इतना ही नहीं, आगे चलकर उसकी शादी भी करा दी। आजकल वह दादाजीके पास खास विश्वासपात्र—आत्मीयके रूपमें काम करते हुए पत्नी और बच्चोंके साथ आनन्दपूर्वक जीवन बिता रहा है।

(अखण्ड आनन्द)

—स्वामी कृष्णानन्द

ईमानदारी

वर्षों पहलेकी बात है। श्रीरंगलालजीकी आसामके एक शहरमें दूकान थी। कपड़ा-गल्ला-सोना-चाँदी-किराना सभी चीजें वे बेचते थे। सचाई और ईमानदारी उनके स्वभावमें थी। असली माल देना, पूरा तौलना उनकी प्रतिज्ञा थी। इससे ग्राहकोंके हृदयमें उनपर पूरा विश्वास था और इससे उनका कारोबार छोटा होनेपर भी बड़ी शान्तिसे तथा सुचारुरूपसे चलता था, कोई झंझट नहीं था और गृहस्थका खर्च आसानीसे निकल जाता था। वे बहुत पैसेवाले नहीं थे, पर सहृदय थे। उनकी पत्नी भी वैसी ही थीं। एक छोटा लड़का था। उनकी सचाईपर विश्वासके कारण आस-पासके सभी लोग तथा उच्च अंग्रेज अधिकारीतक उनको मानते थे।

एक बार वहाँकी सरकारने पुलिस तथा जेल आदिके राशनके लिये टेंडर माँगे। एक दूसरे बड़े व्यापारी थे, वे ही यह सब काम किया करते थे और अधिकारियोंसे मिलकर ऊँचे भावके टेंडर मंजूर करा लेते तथा राशनकी चीजोंमें भी मिलावट करते थे। इसमें उन्होंने बहुत धन कमाया था। एक बार वे पकड़े गये। ऊपरके अंग्रेज अधिकारियोंको पता लगनेपर उन्होंने इनके टेंडर ही लेने अस्वीकार कर दिये। रंगलालजीकी ईमानदारी तथा सचाईकी बात चारों ओर फैली, इससे उच्च अधिकारियोंने उनसे टेंडर माँगे। उनके लिये यह नया काम था। नीचेके अधिकारी उस बड़े व्यापारीको साथ ले जाकर उनसे मिले और उनको बताया—'आप ऊँचे भावके टेंडर दीजिये और मालमें भी

मिलावट कीजिये। हमलोगोंका हिस्सा रख दीजिये। इससे चौगुनी आमदनी होगी। आप एक ही वर्षमें मालामाल हो जायँगे।' रंगलालजीको यह बात नहीं जँची। उन्होंने कहा—'न तो मैं ऊँचे भावके टेंडर दूँगा, न मालमें मिलावट ही करूँगा।' उन अधिकारियों और उस व्यापारीने 'घर आयी लक्ष्मी' का तिरस्कार करनेकी बेवकूफी न करनेके लिये बहुत समझाया। पर बेईमानी-चोरीकी बात उनकी समझमें ही नहीं आयी। इसपर उन लोगोंने कहा—'अच्छी बात है, आप कुछ भी न कीजिये। आप सिर्फ अपना नाम दे दीजियेगा। सारा सप्लाईका काम ये व्यापारी कर लेंगे और इस नामके एवजमें आप तीन वर्षतक पचीस हजार रुपये सालाना लेते रहिये। वह भी छः-छः महीनेका अग्रिम।' उस समय पचीस हजार रुपये बहुत बड़ी चीज थी, पर रंगलालजी इस लोभमें नहीं पड़े और प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया। उनकी इस वज्रमूर्खतापर वे लोग बहुत दुःखी हुए। रंगलालजीने उचित भावके टेंडर दिये। उन लोगोंने बहुत प्रयास किया कि इनके टेंडर स्वीकृत न हों, पर रंगलालजीने जाकर संकेतमें बड़े अधिकारीको सब बातें बता दीं। अतः उनका टेंडर मंजूर हो गया। इस सच्चे व्यापारमें उन्हें प्रतिवर्ष केवल आठ हजार रुपये बचते थे। साहेबने उनकी ईमानदारी तथा सचाईपर प्रसन्न होकर ठेकेका तीन वर्षका समय पूरा होनेपर उन्हें दस हजार रुपये इनामके और दिलवाये तथा आगेके लिये भी उन्हींको काम दिया। यों सत्यकी रक्षा तथा विजय हुई।

—रामकुमार अग्रवाल

कर्तव्यनिष्ठा

रेलवेके एक अधिकारीकी कर्तव्यनिष्ठाकी कुछ वर्ष पूर्व बनी हुई बात है। जूनागढ़के नवाबके व्यवहारके कारण गैरमुस्लिम लोग गाँव छोड़कर चले गये थे। सर्वत्र निस्तब्धता थी। रेलवे क्वार्टरमें रहनेवाले इस अधिकारीके दरवाजेको आधी रातके समय किसीने खटखटाया। इन्होंने दरवाजा खोला। पाँच बुर्काधारी हाथोंमें रिवाल्वर लिये खड़े थे। उनमेंसे एकने कहा—'घबराना नहीं, हमें आपसे कुछ काम है।'

अधिकारी आश्चर्यमें डूब गये, साथ ही कुछ घबराये भी। परंतु प्रसंगको समझकर ऊपरसे स्वस्थता धारण करके वे उन लोगोंको अन्दर ले गये। स्वयं मुँहमें सिगरेट लेकर उन लोगोंके सामने सिगरेटका डिब्बा रख दिया। उनमेंसे एकने कहा—'साहेब! हमें सिगरेट देकर आप हमारे मुख देखना चाहते हैं न?' इसके बाद कुछ क्षण शान्ति रही। यह मौन साहेबको व्याकुल कर रहा था।

मौन भंग करके अधिकारीने कहा—'कहिये क्या काम है?'

टोलीका सरदार बोला—'काम बड़ी ही जोखिमका है तथा सावधानीके साथ करनेका है। आपके सिवा दूसरे किसीको इस कामकी जिम्मेवारी सौंप नहीं सकते। आपको यह काम करना ही पड़ेगा।' एकाध क्षण चुप रहकर और चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर उसने फिर कहा—'खूब सबेरे ही यहाँसे दारू गोला लानेके लिये मिलिटरीके साथ सिपाहियोंको लेकर एक गाड़ी (रेलवे ट्राली) वेरावल जायगी। आपको केवल इस गाड़ीको शापुरकी ओर जाते रास्तेमें उलटा देना है, जिससे साठों सिपाही, ड्राइवर और गार्ड—सबके चिथड़े-चिथड़े उड़ जायँ।'

'अच्छी बात है, आपमेंसे एक आदमी समयपर मेरे साथ चलियेगा, आपका काम हो जायगा।' अधिकारीने उत्तर दिया और उनकी स्वीकृतिसे प्रसन्न होकर बुर्काधारी टोली लौट गयी।

साहेबने छुटकारेकी साँस ली और वे विचार करने लगे कि अब क्या करना चाहिये। रेलवेके एक अधिकारीके नाते उनका कर्तव्य था मुसाफिरोंकी तथा रेलवेकी सम्पत्तिकी रक्षा करना। और कुछ नहीं तो, कम-से-कम मानवताके नाते भावीमें फँसनेवाले उन मनुष्योंकी तथा उनके परिवारवालोंकी तबाहीपर विचार करके भी ऐसा निन्दनीय काम भी नहीं करना चाहिये। पर उनके जरा भी आनाकानी करनेपर.......परिणामका ध्यान आते ही साहेब तुरंत काँप उठे। तुरन्त अन्तमें उनकी कर्तव्यनिष्ठाने साथ दिया और उन्होंने मन-ही-मन यह निश्चय कर लिया कि जानको जोखिममें डालकर भी वे इस अनुचित कार्यको नहीं करेंगे।

निश्चित समयपर उस टोलीमेंसे एकने आकर किवाड़ खटखटाये। जरा भी न घबराकर अधिकारी उसे अंदर ले गये।

उस बुर्काधारीने आते ही उतावली करनी शुरू की—'चलिये, साधनोंको लेकर जल्दी पहुँच जायँ और काम कर डालें।'

'देखो भाई, यह काम करना तो मेरे लिये बायें हाथका खेल है। परंतु मुझसे ऐसी धोखेबाजीका काम होगा नहीं, जिसका नमक खाता हूँ, उसका अहित मैं कैसे कर सकता हूँ?'

यह सुनते ही गरम होकर उस बुर्काधारीने अधिकारीको रिवाल्वर दिखाते हुए कहा—'यह तुम्हारा साथ नहीं देगी। बेकाम बातोंको छोड़कर चुपचाप तैयार हो जाओ।'

'यदि मेरे एकके मरनेसे बासठ मनुष्योंके प्राण बचते हों तो

मुझे जीवनका मोह नहीं रखना चाहिये। लो, चलाओ गोली। अधिकारीने छाती सामने करके कहा।'

पता नहीं, क्यों, उसने रिवाल्वर वापस खींच लिया और जाते-जाते यह कहता गया कि 'साहेब! यह बात कहीं बाहर न जाय, आपको मेरा इतना ही कहना है।'

और इस प्रकार एक भयंकर दुर्घटना होते-होते रह गयी।

(अखण्ड आनन्द)

—दत्तात्रेय मोरेश्वर फाटक

भगवान् शिवका आदेश

मेरी ८ वर्षकी कन्या वीणाको २९ दिसम्बरको भगवान् शंकरने प्रात:काल स्वप्नमें कहा कि हम कैमोर पर्वतपर हैं, वहाँसे उठाकर लाओ। वह ५ बजे सुबह मेरे पास अश्रुधारा बहाती हुई आयी। पूछनेपर कहा कि 'मुझे भगवान् दीखते हैं। उनके काले-काले नाग लिपटे हैं। वे अपने दोनों हाथोंमें बहुत बड़ी प्रतिमा लेकर खड़े हैं।' कह रहे हैं—हम कैमोर पहाड़पर एक पेड़के नीचे जलहरीसमेत विराजित हैं। दो-तीन दिन तो मैंने उसे टालना चाहा, पर वह तो बार-बार रट लगाती ही रही। अन्तमें मैंने उससे कहा कि 'हम उन्हें कहाँ पहाड़पर ढूँढ़ेंगे, रास्ता कहाँ मिलेगा?' मेरे इस प्रकार कहनेका उद्देश्य यही था कि वह बार-बार कहना छोड़ देगी। पर वह ३१ तारीखको सुबह उठते ही कहने लगी कि 'मुझे तो आज भगवान्ने रास्ता भी बतला दिया है, माँ चलो।' यह लड़की तीसरी कक्षामें पढ़ती है। उसने रास्तेका नक्शा खींचकर बतलाया और कहा, 'कल सोमवार है, कल जरूर जाना है।' कैमोरमें बसका मार्ग है। मैं उसे लेकर गयी। रास्तेमें बससे ही उसने वह चोटी अँगुलीसे बतायी—'माँ! यही पहाड़ है, जो मुझे भगवान्ने बताया है।' दूसरे दिन प्रात:काल ही हम सब उसके साथ चले, वह आगे-आगे, हम पीछे-पीछे। चार-पाँच घंटेतक ढूँढ़नेपर एक पेड़के नीचे हमें जलहरीसमेत भगवान् शिवकी प्राचीन प्रतिमा मिली। उसे हम विधिसहित उठाकर लाये तथा संक्रान्तिके दिन अखण्ड रामायणका पाठ तथा सोमवारको रुद्राभिषेक किया। अब सैकड़ों स्त्री-पुरुष दर्शनार्थी आते हैं। कीर्तन-भजन चलता है। इस पहाड़पर भगवान्ने जंगलमें मंगल कर दिया। यह घटना अभीकी है और मेरे ही घरमें घटित हुई है। —सौ० कौसलकुमारी भटनागर

दानव और देवता

कुछ समय पूर्वकी यह बिलकुल सत्य घटना है। इसमें पात्रोंके नाम मैंने नहीं लिखे हैं।

धन्य हो तुम! तुम वास्तविक रूपमें मानव हो। तुमने मानवताका मान बढ़ाया। मानवताके माथेपर लगे समय-समयपर कलंकके धब्बोंको तुम-सरीखे मानवोंने ही धोया है; पोंछा है; आज जब कि भाई भाईके रक्तको पीनेमें नहीं सकुचाता है, तब तुमने हमें मानवताका कैसा सुन्दर पाठ पढ़ाया है। तुम चने-मूँगफलीका ठेला नहीं खींचते हो, तुम खींचते हो दया, धर्म और मानवताकी गाड़ी।

बात दरअसल यों हुई—अभी एक सप्ताह पूर्व एक छोटे भाईने एक बड़े भाईसे कुछ रुपयोंकी मदद माँगा। छोटा भाई कुछ व्यसनोंका शिकार है, ऐसा जानकर भी बड़े भाईने जो केवल एक चने-मूँगफलीका ठेला चलाता है, कई बार उसे पहले सहायता की थी। यही नहीं, वह उसे इन व्यसनोंसे यथासाध्य दूर रखनेका उपदेशामृत भी पिलाया करता था, किंतु व्यसनोंके कुप्रभावके कारण छोटा भाई तो चिकना घड़ा बना हुआ था। वह सुन तो लिया करता था, किंतु उन बातोंको आचरणमें नहीं उतारता था और यही कारण था कि वह जब-तब बड़े भाईके सम्मुख कुछ-न-कुछ रुपयोंकी माँग रखता रहता था और बड़ा भाई भी ऐसा येन-केन-प्रकारेण उन माँगोंको भरसक पूरा करता था। उस दिन उस बड़े भाईका हाथ तंग था। अतः उसने उस समय उस माँगको पूरा करनेमें अपनी असमर्थता प्रकट की।

१२-१ बजे दिनमें बड़ा भाई तो भोजन आदिसे निवृत्त हो अपने दैनन्दिन कार्यक्रमोंमें व्यस्त हो गया और इधर छोटे भाईने ऐसा घोर कुकर्म कर डाला कि जिससे मानवता बिलबिला उठी। पहलेके सारे अहसानोंको ताकमें रख वह अपने बड़े भाईके चार वर्षीय लड़केकी गर्दन मरोड़ उसे दूरके एक कुएँमें फेंक आया। शामको अपने कलेजेके टुकड़ेको पानीमें मरा देखकर भी बड़े भाईने पुलिसमें रिपोर्ट लिखानेसे एकदम इनकार कर दिया। 'औलाद तो तकदीरमें होगी तो फिर हो जायगी! बेटे-समान भाईको, जो मुझसे दस साल छोटा है और मैंने अपने हाथोंसे पाला-पोसा है, जेल भिजवाकर क्या मैं अपना परलोक बिगाड़ लूँ।' अंदरके लावेको मीचते हुए बड़े भाईने कहा। लाश सामने पड़ी है और वह छोटे भाईसे कह रहा है—'चीखू, यह तूने क्या किया पगले! सोच, इस बच्चेने तेरा क्या बिगाड़ा था? अगर सजा ही देनी थी तो मुझे देता और हाँ, दीवानजी! यह हम भाइयोंकी आपसी बातें हैं। आप तो लिखिये मुझे किसीपर शक नहीं, बच्चा अपने-आप ही गिर पड़ा होगा।'

धू-धू करके चिता जल उठी और तब बुक्का फाड़कर दोनों भाई रो पड़े। तत्पश्चात् बड़ा भाई बोला—'रो मत चीखू! बच्चेकी मौत भी यदि तुझ गुमराहको सही रास्तेपर ले आये तो मैं समझूँगा सौदा घाटेमें नहीं रहा।'

बड़े भाई! तुम वास्तवमें बड़े हो, तुम्हें शत-शत प्रणाम, दानव और देवताके दो प्रत्यक्ष रूप!

—गोपालकृष्ण जिंदल

धन पराव बिष तें बिष भारी

कुछ वर्षों पूर्व राजस्थानके चित्तौड़ जिलेके एक कस्बेमें मेरे पिताजीकी सर्विस थी। जिस कार्यालयमें वे काम करते थे, उसीमें ब्राह्मणजातिके एक अर्जीनवीस थे। वे स्टाम्प-टिकट आदि बेचते थे और आवेदन-पत्र आदि लिखते थे। वे शिवजीके बड़े भक्त थे। गाँवके बाहर शिवजीके मन्दिरमें नित्य रामचरितमानसका पाठ करना उनका नियम था। एक दिन इस मन्दिरमें लोभके बुरे परिणामोंपर वार्ता कर रहे थे। 'दूसरोंके धनको विषके समान समझना चाहिये; किंतु आजके युगमें क्या ऐसा हो सकता है?' इस प्रकार इसपर तर्क-वितर्क हो रहे थे। तो उन अर्जीनवीसने, जो अपनी आप बीती सुनायी, वह नैतिकताका आदर्श है।

घटना उस समयकी है जब १९२०-२१ में बम्बईमें गोवधके प्रश्नको लेकर भयंकर हिंदू-मुस्लिम दंगे हुए थे। बहुसंख्यक-मुस्लिम बस्तीमें हिंदुओंकी दूकानें लूटी गयीं और हिंदू-बहुसंख्यक बस्तीमें मुस्लिम दूकानदारोंकी। उन दिनों उपर्युक्त अर्जीनवीस महोदय भी बम्बईमें एक सेठके यहाँ मुनीमीका कार्य करते थे। दंगोंके समय एक दिन ये जब बाजारमें कोई वस्तु खरीदने गये तो वहाँ दंगा शुरू हो गया था। दूकानोंका सामान बाहर पड़ा था। सड़क जन-शून्य हो रही थी। अर्जीनवीस जब भयभीत होकर वापिस घर लौटने लगे तो उनको एक नालीके किनारे एक कागजका बण्डल पड़ा दीखा। वे उसको लेकर जल्दीसे घर आ गये। घर आकर उसको खोला, देखा तो उसमें बीस हजारके नोट थे। पहले तो वे बहुत हर्षित हुए कि आज घरकी सारी दरिद्रता समाप्त हो जायगी और स्वदेश जाकर इन

रुपयोंद्वारा आनन्दसे व्यापार आदि करेंगे। किंतु दूसरे ही क्षण उनकी आत्माने उनको धिक्कारा और अन्तर्मनसे आवाज हुई— 'रे मूर्ख! जिन रुपयोंके बलपर तू इतने मीठे-मीठे भविष्यके स्वप्न देख रहा है, क्या इनको तूने अपने गाढ़े पसीनेसे कमाया है? उस व्यक्तिपर इस समय क्या बीत रही होगी जिसके ये रुपये होंगे।' आखिर उनको आत्मग्लानि पैदा हुई। उन्होंने विचार किया कि जिसके ये रुपये होंगे, वे उसीको लौटा देने हैं। भाग्यसे उस बण्डलपर रुपयेके मालिकका नाम था और दूकानका पूरा पता भी लिखा था। दंगा शान्त हो जानेपर ये उस दूकानदारके पास गये और उसको रुपये सौंपकर सारी घटना सुना दी। उस दूकानदारको तो स्वप्नमें भी आशा नहीं थी कि उसके रुपये उसे मिल जायँगे। उसने इनको कहा कि 'आप मनुष्य नहीं देवता हैं।' उसने इनको कुछ रुपये देने चाहे; किंतु इन्होंने नहीं लिये और कहा—'मेरा इन रुपयोंपर कोई अधिकार नहीं था, यह धन तो पराया था, जो मेरे लिये विषके समान है। मैंने रुपये लौटाकर अपने कर्तव्यका पालनमात्र किया है। इसमें विशेषता क्या है? पारितोषिक लेनेपर तो मेरे कर्तव्यपालनकी बिक्री होती है और ईश्वरकी दृष्टिमें मैं अपराधी होता हूँ।' यह कहकर वे वापस अपने घर आ गये। इस घटनाको सुनकर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। बहुतोंने उनकी तारीफ की और कुछ लोगोंने उनको अकस्मात् मिले हुए इतने रुपये वापस देनेके कारण मूर्ख भी बतलाया। यह निश्चय है कि उनका यह कार्य मूर्खतापूर्ण नहीं था, बल्कि नैतिकता एवं निःस्वार्थताका उत्तम आदर्श था।

—श्याममनोहर व्यास, बी० एस-सी०

रामायणकी चौपाई

मेरे दोनों पैरोंमें बहुत बड़े-बड़े दाद तीन-चार सालसे थे। मैं बहुत बेचैन था। अनेक ओषधियोंका प्रयोग किया पर निष्फल रहा। मैंने तुलसीकृत रामचरितमानसकी एक चौपाईका जप प्रारम्भ किया। बुद्धि श्रद्धापूर्ण तथा निश्चयात्मिका थी। पूर्ण सफलता मिली। चौपाई यह है—

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥

एक सालके जपसे दोनों पैरोंके दाद अच्छे हो गये। चार महीनेसे निम्नलिखित एक श्लोकका जप भी साथ चलता रहा—

श्रीरामं च हनूमन्तं सुग्रीवं च विभीषणम्।
अङ्गदं जाम्बवन्तं च स्मृत्वा पापैः प्रमुच्यते॥

इससे निश्चय ही कर्मजन्य पापफलोंका क्षय होता है। विश्वास चाहिये।

—हरीदास सबीर, नाभा

ताँगेवालेकी ईमानदारी

कुछ ही दिनों पहलेकी बात है। हमारे यहाँ कलकत्तेसे घरके कुछ लोग आये थे। गोरखपुर स्टेशनसे वे लोग ताँगेपर घर आये। सामानसमेत सब लोग उतर गये और सामानको यथास्थान रखवाकर सब अपने-अपने काममें तथा मिलने-जुलनेमें लग गये। करीब पौन घंटे बाद एक ताँगेवालेने आकर पुकारा—'चश्मेवाले बाबूजीकी एक पेटी मेरे ताँगेमें रह गयी है, वे पहचानकर ले लें।' उन लोगोंसे पूछा गया। सभीने कहा—'सारा सामान ताँगोंसे उतरवा लिया गया था। हमारा कोई सामान नहीं छूटा है।' फिर, जब पेटी देखी तब तो वे सज्जन कहने लगे—'मुझे तो इस पेटीकी याद ही नहीं थी।' यद्यपि उसमें उनका जरूरी सामान था। ताँगेवालेने पूछनेपर अपना नाम 'ढोंढे' बतलाया और कहा कि 'मैं स्टेशन लौट गया था। वहाँ जब दूसरे मुसाफिरोंका सामान रखने लगा, तब नीचे पेटी दिखायी दी, अतः उन मुसाफिरोंको छोड़कर मैं दौड़ा आया हूँ। आप खोलकर देख लें। सब सामान ठीक है न?' खोलकर देखनेकी तो कोई बात ही नहीं थी। जो पेटी देने आया वह सामान थोड़े ही चुराता, पर ताँगेवालेके आग्रहसे पेटी खोलकर देख ली गयी। ताँगेवालेकी ईमानदारी तथा मुसाफिर छोड़कर पेटी लौटानेकी तत्परता देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वह गरीब है, पर आजकलके अधिकांश अमीरोंकी अपेक्षा उसकी सत्य-निष्ठा तथा ईमानदारी बढ़ी-चढ़ी है।

—सूर्यकान्त अग्रवाल

एक महात्माका आतिथ्य

जिन सच्चे साधु-संतोंको हम अपनी अज्ञानताके कारण ढोंगी, लालची, आडम्बरी इत्यादि-इत्यादि समझते हैं, कभी-कभी वे भी हमारे सम्मुख इस प्रकार उपस्थित होते हैं कि उनकी एक ही करामातमें हमारे हृदयका सारा अज्ञान रफूचक्कर हो जाता है और उसी क्षण श्रद्धा तथा भक्तिसे उनके पाद-पद्मोंमें हमारा हृदय स्वतः ही नत हो जाता है। ऐसी अनेक आत्माएँ साधारणतया हमारे सम्मुख उपस्थित होती हैं, फिर भी हम देखते ही रह जाते हैं। अफसोस!

कुछ वर्ष हुए हम तीन साथी पातालभुवनेश्वरकी गुफा देखने गये। यह गुफा अल्मोड़ेके गंगोलीहाट नामक क्षेत्रके निकट स्थित है। स्थान बड़ा रमणीय है, जहाँके मनोहारी दृश्य नास्तिकोंके हृदयमें आस्तिकताकी लहर-सी पैदा कर देते हैं। अस्तु! हमने गुफाकी प्रत्येक चमत्कारिताका निरीक्षण किया और खानेसे निवृत्त हो, गुफाके बाहर एक जलस्रोतके निकट, धूनी रमाये—एक बाबाके सम्मुख बैठकर अपनी थकान मिटाने लगे।

महात्माजीको हम सबने दण्डवत्-प्रणाम किया। मेरे आश्चर्यकी सीमा न रही, जब मैंने देखा कि महात्माजीके सम्मुख कैपस्टन, सीजर, नैशनल गोल्ड फ्लेक आदि मार्कोंकी सिगरेट, बीड़ी, सुपारी इत्यादि-इत्यादिके पैकेट और चार नग संतरेके भी रखे हैं। पास ही राम-कृष्ण-शिव आदि देवताओं और उर्वशी-जैसी अप्सराओंके रंगीन चित्र भी रखे हैं।

मैंने और मेरे साथियोंने यह निश्चय कर लिया कि ये महात्माजी शायद उसी श्रेणीके हैं, जो सच्चे साधु-संतोंका नाम

बदनाम करते हैं। सम्भवत: मुझे उनपर क्रोध भी आया और मेरे साथी तो अंग्रेजी भाषामें उन्हें अंटसंट कहने लगे।

महात्माजीने हमसे परिचय पूछा और वे भगवत्सम्बन्धी चर्चा करने लगे। उनकी भगवत्-चर्चामें भी मुझे, '**जाकी रही भावना जैसी**' के अनुसार काम-क्रोध-लोभ ही दिखायी देने लगे। एकाएक कैपस्टनके डिब्बेको देखकर मेरे मुँहमें पानी भर आया; क्योंकि यहाँ पर्वतीय प्रदेशमें ऐसी सिगरेट अन्यत्र कहाँ उपलब्ध थी—आखिर मैं अपने व्यसनको काबूमें न कर सका। मैंने कहा—'महात्माजी! और बात तो होती रहेगी, हम इस समय आपके अतिथि हैं, कुछ आवभगत होनी ही चाहिये—बस, हमें एक-एक संतरा, एक-एक कैपस्टन और एक-एक सुपारीकी आवश्यकता है।'

मेरी बात सुनकर महात्माजी हँसे और इतने हँसे कि हँसते ही रहे!

हमने उन्हें पागल भी समझा।

'अब आये राहपर' वे बोले—'अच्छा बेटा! तुम सिगरेट भी पीता है?' हाँ, इच्छा बड़ी प्रबल होती है, कैपस्टनका डिब्बा देखा तो मुँहमें पानी भर आया, परंतु काश! मेरे पास कुछ नहीं है, जो मैं तुम-जैसे भोले अतिथियोंकी सेवा कर सकूँ।

उन्होंने कैपस्टनका डिब्बा उठाया, बोले—'यह लो कैपस्टन।' (डिब्बा खाली था) वे बोले—'अच्छा, सीजर पिओगे?' उन्होंने सीजरका पैकेट उठाया (वह भी खाली था)। वे हँसकर बोले, 'लो पिओ! अच्छा बीड़ी ही सही।' उन्होंने बीड़ीका बंद डिब्बा उठाकर खोला तो उसमें गोबर भरा था। अरे! 'अच्छा सुपारी

चबाओगे? (पैकेट उठाकर) लो!' (वह सुपारी न थी, तुलसीकी मालाके बिखरे दाने थे)। 'लो, फिर संतरे खाओ।' (उठाकर) वह केवल संतरेका बाहरी खोखला था।

महात्माजी फिर ठहठहाकर हँसने लगे—'तृष्णा बड़ी बुरी चीज है बेटा!'

हम चित्रलिखित-से उनके सभी चमत्कार देखने लगे और समझ न पाये कि ये क्या कर रहे हैं। एकाएक मेरा एक साथी बोल उठा—'महात्माजी! यह क्या! हम आपके अतिथि हैं और आप मजाक-सा कर रहे हैं।' वे हँसते हुए बोले—'बेटा! मजाक नहीं सच है और बिलकुल वास्तविक चीजें तुम्हें दिखा रहा हूँ! देखो, यदि तुमको पीना ही है तो क्रोधको पीओ, सिगरेट नहीं। यदि तुमको खाना ही है तो अहंकार खाओ, संतरे नहीं। यदि तुमको चबाना ही है तो राग-द्वेषादि विकारोंको चबा जाओ, सुपारी नहीं और यदि तुमको पागल ही होना है तो यह देखो, (श्रीकृष्णका चित्र दिखाकर) इसके लिये बनो, (दूसरा चित्र अप्सराका दिखाकर) इसके लिये नहीं। मैं यही तुम भोले अतिथियोंका सत्कार कर सकता हूँ। जो मेरा वास्तविक आतिथ्य है, इसे ग्रहण करो।'

उस समय हमारे आत्माके सामनेसे एक परदा-सा उठता अनुभव हुआ और हमने महात्माजीके चरण पकड़ लिये।

इस घटनाको बीते आज दो साल हो गये हैं। शायद मेरे दो साथी सँभल भी गये हैं, पर मैं अभागा फिर भी न सँभल सका। काश! मैं भी सँभल पाता! चाहे मैं न सँभलूँ, पर मुझे विश्वास है कि मेरे भाई जो इस घटनाको पढ़ेंगे, सुनेंगे और समझेंगे, वे अवश्य ही सँभल जायँगे। —देवेन्द्रकुमार गन्धर्व

कर्जदारसे शरम

श्रीरामतनु लाहिड़ीकी बहुत-सी जीवनियाँ लिखी जा चुकी हैं। उनके जीवनकी अनेक घटनाएँ शिक्षाप्रद हैं। कहते हैं, 'एक बार वे कलकत्तेकी एक सड़कपर अपने एक मित्रके साथ चले जा रहे थे। एकाएक उन्होंने एक गलीकी मोड़पर अपने मित्रकी बाँह पकड़ ली और उसे साथ लिये एक गलीमें झपाटेके साथ घुस गये। जल्दी-जल्दी कदम रखते हुए वे चलते रहे और उस समयतक नहीं रुके, जबतक पीछे देखकर उन्होंने यह निश्चय न कर लिया कि उनका पीछा तो नहीं किया जा रहा है। उनके मित्र उनकी यह हरकत देखकर बहुत चकित हुए और कुछ समयतक तो उनके मुँहसे बोलतक न निकला। अन्तमें उन्होंने पूछा कि उनके इस प्रकार घबराकर दौड़ पड़नेका क्या कारण था?'

रामतनु बाबूने अबतक अपने मित्रका हाथ छोड़ दिया था। उनका दिमाग भी ठीक-ठिकाने आ गया था। उन्होंने कहा— 'ओह, मैंने एक आदमीको देखा था। वह दूरसे निश्चय ही हमलोगोंकी ओर आता दिखायी दे रहा था।'

'लेकिन इससे क्या? उससे बचकर भागनेकी ऐसी क्या जरूरत आ पड़ी और वह भी इतने विचित्र ढंगसे? आपको उससे ऐसा डर ही क्या था?'

'असल बात यह है'—रामतनु बाबूने कहा कि 'वह आदमी बहुत अरसेसे मेरा कर्जदार है। धन तो बहुत ज्यादा नहीं है, परंतु वह उसे वापस करनेमें असमर्थ है।' 'किंतु उससे बचकर इस तरह भागनेका यह तो कोई कारण नहीं है।' उनके मित्रने उन्हें टोककर पूछा।

'कारण तो है।' रामतनु बाबू बोले—'समझो जरा, यदि हम दोनोंकी भेंट हो जाती तो हम दोनोंको ही एक-दूसरेके सामने पड़नेसे शरम आती और बेचैनी महसूस होती। वह तुरंत मुझसे क्षमा माँगता और धन लौटानेका ऐसा वादा करता जो वह कभी भी पूरा नहीं कर सकता था। असलमें ऐसे ही वादे वह पीछे करता भी रहा है। अब मैं यह चाहता था कि न तो वह लज्जित हो और न उसे मेरे कारण फिरसे झूठ ही बोलना पड़े।'

'किंतु इससे तो अच्छा यही था कि उससे आप कह देते कि आपने कर्ज छोड़ ही दिया और इस तरह सारा मामला ही हल हो जाता' मित्रने कहा।

'शायद मैं यही करता भी' रामतनु बाबूने कहा—'परंतु फिर मुझे यह खयाल आया कि मेरे ऐसा करनेसे उसके आत्मसम्मानको चोट लगेगी। इससे बेहतर मैंने यही सोचा कि उसके सामने ही न पड़ा जाय। इससे उसका यह आत्मसम्मान बना रहेगा कि उसपर किसीका कर्ज तो चाहिये और वह उसे अवसर आनेपर अवश्य लौटा देगा। कभी-कभी आदमीका भ्रम बने रहनेसे भी उसका आत्मविश्वास नष्ट नहीं होता।'

उनके मित्र यह देखकर दंग रह गये कि रामतनु बाबूमें दूसरोंकी भावनाओंका खयाल रखनेकी कितनी क्षमता है। उनका तो यहाँतक खयाल था कि इस संसारके भीतर शायद ही इतनी सुकोमल भावनाएँ रखनेवाला दूसरा आदमी मिल सके। निश्चय ही रामतनु बाबू-जैसे मनुष्य इस धरतीपर जल्दी दिखायी नहीं देते!

—बल्लभदास बिन्नानी

यह व्यापार

भाव बढ़ने-बढ़नेकी धारणासे खरीदकर इकट्ठी की हुई मूँगफली अकस्मात् आग लगकर सब भस्मीभूत हो जायगी, ऐसी कल्पना भी किसने की थी? लालाजीकी तो मानो छाती ही बैठ गयी। कैसे न बैठती! दूसरोंसे रकम लेकर, जितनी खरीदी जा सकती थी, उतनी मूँगफली खरीद ली थी! भाईका अन्तकाल हुए अभी थोड़े ही दिन बीते थे कि यह घावको ताजा करनेवाली नयी विपत्ति आ गयी। इस विषादके साथ बड़ा तीखापन था। अपनी इच्छा न होते हुए भी भाईने मूर्खताभरी मूँगफलीकी खरीद की और उसकी व्यवस्था किये बिना ही वह इस दुनियाको छोड़कर चला गया और उसके बाद यह दुर्दशा आ पड़ी।

अग्निके कारण आयी इस विपत्तिके समय कितने ही व्यापारी, सगे-सम्बन्धी आश्वासन देने लालाजीके पास आये। परंतु लालाजीके इस व्यापारमें जिनकी रकम लगी थी, वे बाबू जब आये तब तो लालाजी काँप उठे। बात शुरू होते ही लालाजीने उनसे कहा—'बाबूजी, मैं बिलकुल टूट गया हूँ। मेरा भाई मर गया और मुझे भी मारता गया। मेरी जरा भी इच्छा नहीं थी, परंतु........। लालाजीकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। आश्वासन देने आये हुए बाबूने फोन करके अपना खाता मँगवाया।

खाता आया और बाबू उसे खोलकर उसके पन्ने उलटने लगे। लालाजी लगभग पैरोंमें पड़कर कराह उठे, बोले—'बाबूजी, घावपर नमक! जरा तो विचार कीजिये। मैं इस समय कैसे क्या करूँगा, अभी कुछ दिन ठहरिये, पीछे.......।'

बात यह थी कि खाता मँगवानेवाले बाबूने लालाजीको एक बड़ी रकम व्यापारके लिये ब्याजपर उधार दे रखी थी, परंतु ऐसे बुरे समयमें उन्हें खाता उलटते देखकर उक्त लालाजी घबराकर विनती कर रहे थे।

बाबूने खातेके जिस पन्नेमें उधारकी रकम लिखी थी और इकरारनामा था, उस पन्नेको खातेसे निकाला और फाड़कर दूर फेंक दिया बिना किसी हिचकके। लालाजी तो आँख फाड़कर उनकी ओर देखते रह गये। बाबूने कहा—'लालाजी! आपकी आबरू मेरे हाथमें है और मेरी आबरू आपके हाथमें है। मेरे रुपये और इकरार सब आपके भाईके साथ था। वे जीवित होते तो चाहे जिस दिन रकम वसूल हो जाती। वे गये तो उनके साथ यह उधार और इकरार भी टूट गया। छाती हो तो दूसरी रकम ले जाइयेगा। यह तो व्यापार है, व्यापार!' इतना कहकर बाबूजी उठे और चलते बने।

लालाजी तो इस व्यवहारको देखकर अवाक् रह गये। अन्तरमें धन्यवाद देते रहे—'वाह रे तेरी मर्दानगी, धन्य तेरा विशाल हृदय!'

—शशिकान्त प्र० दुबे

एक अंग्रेज महानुभावकी मानवता

संवत् १९८२ की बात है। मैं मुगलसराय स्टेशनसे कलकत्ते जानेके लिये डाकगाड़ीके मध्यम श्रेणीके डिब्बेमें बैठा। उसी डिब्बेमें एक अंग्रेज सज्जन भी सवार हुए। वे मेरे पास बैठ गये। मैं उस समय झाड़-झाड़कर पगड़ी बाँध रहा था। अंग्रेज सज्जनने कहा—'यह तो बहुत अच्छी लगती है।' मैंने हँसकर कहा—'अच्छी लगती है तो आप क्यों नहीं बाँधते।'

इतना सुनते ही उन्होंने पेटी खोलकर एक फोटो निकाला। फोटो उन्हींका था। इसमें उन्होंने साफा बाँध रखा था (जैसा सेल्वेशन आर्मीवाले बाँधते हैं)। एक दूसरा फोटो और निकाला। उसमें इनके अपने फोटोके साथ मद्रासके गवर्नरका फोटो भी था। गवर्नर महोदयके द्वारा लिखा हुआ था—'ये सज्जन बड़े दानी और आत्मबली पुरुष हैं!' मैंने उनसे इसका रहस्य पूछा। तब उन्होंने अपना कोट उतारा और पतलूनके बटन खोलकर दाहिनी जाँघका वह स्थान दिखाया, जो बहुत मांसल होता है। मैंने देखा। वह समूचा स्थान कटा हुआ था और उसमें गड्ढे पड़े थे।

फिर बटन बंद करके उन्होंने बतलाया कि 'एक बार मेरा स्वास्थ्य खराब था, इसलिये मैं अस्पताल गया था। वहाँ सिविलसर्जनके पास बैठा था कि इतनेमें एक भिखारी आठ सालकी एक लड़कीको लेकर आया। उसकी छाती सड़ गयी थी और वह बहुत ही दु:खी थी। सिविलसर्जन महोदयने देखकर बताया कि 'इसके अच्छे होनेका एक ही उपाय है और वह यह कि कोई स्वस्थ मनुष्य अपना ताजा मांस काटकर दे और इसका सड़ा अंश निकालकर वह मांस वहाँ जोड़ दिया जाय। पर ऐसा कौन करेगा?' मैंने

कहा—'सिविलसर्जन महोदय! मेरे शरीरका मांस काटकर जोड़ दिया जाय।' सिविलसर्जनने कहा—'आप नशेमें हैं क्या? इसमें कष्ट तो भयानक होगा ही, मृत्युतककी नौबत आ सकती है।' मैंने कहा—'मैं कभी नशा करता ही नहीं।' तब सिविलसर्जन महोदयने मुझे दूसरे दिन आनेको कहा। मैं दूसरे दिन पहुँचा और मांस काटकर उसके लगानेके लिये सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेकर मैंने उनको लिख दिया। तदनन्तर डॉक्टरने ५५ टुकड़े मांस काटकर लड़कीके सड़े मांसको निकालकर उस जगह जोड़ दिये। मैं बेहोश हो गया था। दो दिनके बाद मुझे होश आया। लड़की बिलकुल अच्छी हो गयी।'

मैंने उन अंग्रेज सज्जनसे पूछा कि 'आप क्या काम करते हैं?' उन्होंने बताया कि 'मैं हिंदुस्तान आनेवाले ईरानी लोगोंकी देख-रेख रखता हूँ। मुझे इतना वेतन मिलता है।' वेतन बड़ा था। मुझे उन्होंने बताया कि 'वे अपने लिये बहुत थोड़े पैसे खर्च करके शेष सब अस्पतालोंमें दे देते हैं। इसीसे गवर्नर महोदयने उनको 'दानी' बतलाया है और शरीरका मांस काटकर दिया था, इससे 'आत्मबली' कहा है।'

उनकी बातें सुनकर मुझे उनकी मानवताके प्रति बड़ी श्रद्धा हुई। प्राचीनकालमें जो काम दधीचिने किया था, वही इन्होंने किया। तदनन्तर एक खानसामा खानेका प्लेट लाया तो उन्होंने केवल चाय-बिस्कुट लेकर और चीजें लौटा दीं—कहा कि 'ये निरामिषाहारी सज्जन मेरे पास बैठे हैं—इन्हें कष्ट होगा। धन्य!

—हरीबकस नवलगढ़िया

रणजीतसिंहकी उदारता

पंजाबके महाराजा रणजीतसिंह बड़ी उदार प्रकृतिके पुरुष थे। एक बार वे कहीं जा रहे थे। उनके साथ अंगरक्षक और सेनाके अधिनायक भी थे। जब वे शहरके बीचोबीचवाली सड़कपर पहुँचे, तब अकस्मात् एक ढेला आकर उनके माथेपर लगा। इससे उन्हें बहुत तकलीफ हुई।

उनके अंगरक्षक और सेनाके लोग दौड़े और एक बुढ़ियाको लाकर उनके सामने उपस्थित कर दिया।

बुढ़िया भयके मारे काँप रही थी। उसने हाथ जोड़कर रोते हुए कहा—'सरकार! मेरा बच्चा तीन दिनसे भूखा था, खानेको कुछ नहीं मिला। मैंने पके बेलको देखकर ढेला मारा था। ढेला लग जाता तो बेल टूट पड़ता और उसे खिलाकर मैं बच्चेके प्राण बचा सकती, पर मेरे अभाग्यसे आप बीचमें आ गये। ढेला आपको लग गया। मैं निर्दोष हूँ। मुझे मालूम न था कि आप आ रहे हैं। नहीं तो, मैं.........मुझे क्षमा कर दीजिये महाराज!'

महाराजाने करुणाभरी दृष्टिसे बुढ़ियाकी ओर देखा। फिर अपने मन्त्रीसे बोले—'बुढ़ियाको एक हजार रुपये और खानेका सामान देकर आदरपूर्वक घर भेज दो।'

मन्त्री बोला—'यह क्या कर रहे हैं सरकार! इसने आपको ढेला मारा, इसे तो दण्ड मिलना चाहिये।'

महाराजा हँस पड़े। उन्होंने कहा—'मन्त्रीजी! जब निर्जीव और बिना बुद्धिवाला पेड़ ढेला मारनेपर सुन्दर फल देता है, तब मैं प्राण और बुद्धिवाला होकर इसे दण्ड कैसे दे सकता हूँ!'

महाराजाकी बात काटनेवाला वहाँ कोई नहीं था। सबने उनकी उदारता और सरल प्रकृति देखकर श्रद्धासे सिर झुका दिये। उस बुढ़ियाको उसी दिन एक हजार रुपये और भोजनका सामान खजानेकी ओरसे दे दिया गया।' —बल्लभदास बिन्नानी

प्रभुने पुकार सुन ली

एक बार मैं एक आवश्यक पुस्तक ढूँढ़ने लगी। बहुत चीजें पटकीं, बहुत देरतक ढूँढ़ी, पर वह पुस्तक न मिली, न मिली। यहाँतक कि मेरा जी ऊब गया। तब मुझे भगवान्की याद आयी। मैंने प्रभुसे कहा—'हे भगवन्! मैं दो पंक्ति गाऊँगी। अगर वह पंक्ति समाप्त होते-होते मुझको वह पुस्तक नहीं मिलेगी तो मैं आपसे निराश हो जाऊँगी।' प्रभुने मेरी विनती सुन ली। तब मैं यह पंक्ति उसी समय गाने लगी—'**गोविन्द हरे! गोपाल हरे! जय-जय प्रभु दीनदयाल हरे।**' बस, पंक्तिका समाप्त होना था कि मेरी नजर बहुत-सी चीजोंके गिचड़-पिचड़में उस पुस्तकपर पड़ गयी। मैंने भगवान्को धन्य-धन्य कहा और तब मेरा भगवान्के प्रति इतना प्रेम बढ़ गया कि मैं रोने लगी। बात छोटी-सी है, पर विश्वास बढ़ानेवाली और कभी बड़ी विपत्तिसे तारनेवाली।

—कु० उषा अग्रवाल

आदर्श अंग्रेज-चरित्र

सन् १९२४ की बात है, मेरे सहपाठी श्रीनरुलाजी, जो आजकल नागपुर साइंस कॉलेजमें उपप्रिंसिपलके पदपर नियुक्त हैं, उच्च शिक्षाके लिये विलायत गये थे। वहाँसे तीन साल पश्चात् पी-एच० डी० की उपाधि लेकर वापिस भारतवर्षमें आये। उन्होंने अपनी जबानी अंग्रेज-चरित्रकी महानताका वर्णन जो किया था, वह मैं उपस्थित करता हूँ। उन्होंने बतलाया था कि वे लंदनके एक घरमें पेइंग गेस्टकी हैसियतसे ठहरे। वहाँपर और व्यक्तियोंके अतिरिक्त मेट्रनकी एक तरुण लड़की थी, जो वहाँ किसी दूकानपर 'सेल्स गर्ल' का काम करती थी। इधर इनको विज्ञानमें पी-एच० डी० करना था, इसलिये इन्हें लैबरेटरीमें बहुत काम करना पड़ता था। ये जेबमें डबल रोटी ले जाया करते थे और भूख लगनेपर वही खा लेते थे। एक दिन दोनोंको सायंकाल अवकाश था; इसलिये प्रातःकाल यह विचार निश्चित हुआ कि आज सायंकालको सिनेमा जायँगे। फिर मिलनेका स्थान निश्चित हो गया। प्रभुकी लीला विचित्र है। निश्चित समयसे दो घंटे पूर्व बड़े जोरकी वर्षा प्रारम्भ हो गयी। जब इन्होंने लैबरेटरीसे बाहर निकलकर देखा तो हिम्मत नहीं पड़ी कि ऐसी वर्षामें वहाँसे निकला जा सके। ये वहीं ठहरे रहे, परंतु वह लड़की वर्षाकी परवा न करके निश्चित समयपर नियत स्थानपर पहुँच गयी और मूसलाधार वर्षामें बिना छाते या रेन-कोटके खड़ी भीगती रही। इधर जल-वर्षा बंद हुई, तब ये भी उस ओर जा निकले। उसे पानीसे भीगी हुई तथा सर्दीसे

काँपती हुई देख इनके मुखसे निकला—'ओह! आप यहाँ हैं?' (Oh ! You are here?) उसने काँपते हुए होठोंसे कहा—'मुझे तो यहाँ रहना चाहिये था' (I was supposed to be here)। इतना कहा और उसके होठ बंद हो गये; उसने इनसे यह शिकायत नहीं की कि तुम समयपर क्यों नहीं पहुँच सके। परंतु उसके शब्द इनको ऐसे लगे जैसे किसीने भालेसे मर्मस्थानको बींध डाला हो। इनका सिर 'अंग्रेज-चरित्र' के आगे नत हो गया।

इन्होंने फिर बतलाया कि 'समय व्यतीत होनेपर वह दिन निकट आ गया जब कि मुझे अपना थीसिस दाखिल करना था। परंतु समयके अभावसे मुझे बहुत कष्ट हो रहा था कि अब क्या किया जाय; इतनी जल्दी मेरे लिये लिखना असम्भव था; मैं इसी चिन्तामें डूबा था कि वही लड़की जिसके साथ मेरा भाई-बहिन-जैसा शुद्ध प्रेमका सम्बन्ध था, मुझसे पूछने लगी कि 'आज आप उदास क्यों हैं?' मैंने कहा कि 'एक ही दिनमें मुझे थीसिस दाखिल करना है और मुझमें साहस नहीं कि मैं इतनी जल्दी इस सुलेखको लिख सकूँ। यदि यह तिथि निकल गयी तो फिर छः महीने और प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इसलिये मैं विवश हुआ सो नहीं पा रहा हूँ।' बिना रुके उसने झट कहा—'आप इसके लिये जरा भी चिन्ता न करें। मैं टाइप बहुत अच्छा जानती हूँ और मेरी स्पीड प्रति मिनट ८० शब्दकी है। मैं सारा थीसिस टाइप कर दूँगी।' मैंने प्रसन्नताकी श्वास ली और थीसिस उसके हवाले कर दिया। पहले एक-दो घंटे मैं उसकी सहायता करता रहा,

परंतु फिर निद्राने मुझे विवश कर दिया। मैं सो गया परंतु वह देवी सारी रात्रि टाइपपर जुटी रही। जब प्रातःकाल सात बजे मैं उठा, तब मैंने देखा कि वह लगी हुई है और सर्दीसे उसकी अंगुलियोंसे रक्त बह रहा है। वह थीसिस समाप्त कर ही चुकी थी, मैंने उसका साहस देखकर उसकी प्रशंसा की। परंतु उसने कहा कि 'इसमें कौन-सी बड़ी बात हुई, यह तो मेरा कर्तव्य ही था कि इस संकटमें मैं आपकी थोड़ी-बहुत सहायता करती।' धन्य हैं ऐसे मनुष्य—जो अपने सुखकी जरा भी परवा न करके दूसरेके हितके लिये अपने-आपको अर्पण कर देते हैं। धन्य है उनका चरित्र जो बिना किसी लालचके तथा बिना किसी आर्थिक लाभके इस प्रकार करते हैं।

—योगेन्द्रराज भण्डारी

दयाके सागर विद्यासागर

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर अपने मित्र श्रीगिरीशचन्द्र विद्यारत्नके साथ बंगालके कालना नामक गाँव जा रहे थे। रास्तेमें उनकी नजर एक लेटे हुए मजदूरपर पड़ी, जिसे हैजा हो गया था। उसकी भारी गठरी एक ओर लुढ़की पड़ी थी। उसके मैले कपड़ोंसे बदबू आ रही थी। लोग उसकी ओरसे मुख फेरकर जल्दी-जल्दी चले जा रहे थे। मजदूर बेचारा उठनेमें भी असमर्थ था। विद्यासागर तो दयासागर थे, उनके मित्र भी उनसे पीछे क्यों हटते। उन्होंने मजदूरको अपनी पीठपर बैठाया और उनके मित्रने मजदूरकी गठरीको सिरपर रखा और उसे लेकर वे कालना पहुँचे। मजदूरकी वहाँ उन्होंने चिकित्सा करायी। जब वह अच्छा हो गया, तब उसे कुछ पैसे देकर घर भेज दिया।

—(पराग)

सभी मनुष्योंसे प्रेम

शिशु बाबूका नाम न केवल उनके जन्मस्थानमें ही आदरके साथ लिया जाता था, बल्कि आस-पासके इलाकेमें दूर-दूरतक वे प्रसिद्ध थे। वे बहुत धनी थे, किंतु उनका नाम धनके कारण नहीं था। उनके हृदयमें मनुष्यमात्रके लिये लबालब प्रेम भरा था।

एक दिन शामको उनका एक नौकर उनकी बैठकमें दीया जला रहा था। ऐसा करनेमें एक कीमती झाड़फानूस उसकी लापरवाहीसे फर्शपर गिरकर चकनाचूर हो गया। नौकरकी तो डरके मारे जान ही निकल गयी। उधर घरका मैनेजर भी यह घटना देख रहा था। उसने आव देखा न ताव, उस गरीब नौकरके ऊपर वह बरस पड़ा। चिल्लानेके साथ-साथ उस डरे हुए बेजान नौकरपर उसने लातों और घूँसोंके वार करने शुरू कर दिये। इतने जोरसे उसे मारना शुरू किया कि वह चोटोंके मारे चिल्लाने लगा।

शिशु बाबूने यह चिल्लाना सुना तो वे झपटकर ऊपर आ गये। उन्हें देखकर मैनेजरने नौकरको छोड़ दिया और वह अदबसे अलग हटकर खड़ा हो गया। शिशु बाबूने उस नौकरको कंधा पकड़कर उठाया और बाँहोंमें भर लिया। वह उनकी छातीपर सिर रखकर इस प्रकार रोने लगा, जैसे कोई बेटा बापकी छातीपर अपने सारे दुःख उड़ेल देता है। इसी हालतमें कुछ समय गुजर गया।

इसके बाद शिशु बाबूने तेज नजरोंसे अपने मैनेजरकी ओर

देखकर कहा—'महाशय! मैं आपके इस कामको सख्त नापसंद करता हूँ, इस बातकी गाँठ बाँध लीजिये। बताइये, आखिर क्या किया था इस आदमीने?'

मैनेजरने सारी बात बता दी। इसपर शिशु बाबू बोले 'निश्चय ही यह दुर्घटना थी और हममेंसे किसीके द्वारा घट सकती थी। देखते नहीं; जो कुछ हुआ है, उसका इस आदमीको स्वयं कितना दुःख है? आपने जो काम किया है, वह बहुत ही नीचे दर्जेका है।'

शिशु बाबूके सारे नौकर अपने स्वामीको इसी कारण बहुत चाहते थे।

—बल्लभदास बिन्नानी

ईमानदार ताँगेवाला

घटना पुरानी नहीं है। मेरी छोटी बहिनकी शादी थी। बतीसीमें गंगाशहर जाना था, साथमें अन्य औरतें भी थीं। गंगाशहर बीकानेरसे तीन मील दूर है, इसलिये किरायेके ताँगे किये गये और सब लोग ताँगोंपर सवार होकर गंगाशहर गये। रास्तेमें मेरी चाचीजीके हाथमें पहना हुआ एक भुजबंद ताँगेमें दोनों सीटोंके बीचके छेदमें गिर गया। उस समय उनको मालूम नहीं हुआ। गंगाशहर आनेपर सब लोग ताँगोंसे उतरे और ताँगेवालोंको किराया चुका दिया गया। ताँगेवाले सब चले गये।

हम सब ताँगोंसे उतरे और बतीसी[१] लेकर माताजीके पीहर गये। वहाँ आदर-सत्कारके बाद जब टीकेका काम चालू हुआ, उस समय मेरी चाचीजीकी दृष्टि अनायास ही हाथकी ओर गयी और तब उन्होंने देखा कि भुजबंद नहीं है। भुजबंदकी[२] कीमत लगभग १,५०० रुपये थी, खलबली मच गयी। चाचीजीको पूछे जानेपर उन्होंने कहा कि 'मैं ताँगेपर सवार हुई थी, उस समय भुजबंद मेरे हाथमें था और यहाँ कहीं गिरा नहीं है, हो न हो ताँगेमें गिरा है।' ताँगेवालेको कोई पहचानता नहीं था।

---

१. राजस्थानमें जब लड़के या लड़कीका विवाह होता है, तब लड़के या लड़कीकी माँ अपने भाईके यहाँ (पीहर) जाकर भाईके तिलक लगाती है और बादमें भाई भात या माहेरा भरता है। इस तिलककी प्रथाको बतीसी कहते हैं।

२. भुजबंद औरतोंके हाथमें पहननेका एक सोने और मोतियोंका बना गहना।

इतनेमें ताँगेवाला आया और उसने भुजबंद देते हुए कहा— 'जब मैं अपने घर गया और जब मैंने घोड़ेको दाना-पानी देनेके लिये खोला तथा ताँगेको साफ करते समय इसको देखा; तब मैंने समझा कि यह भुजबंद तो आपका ही हो सकता है; क्योंकि आज मैं पहले-पहल आपके ही किरायेपर आया था। मैंने सोचा आपलोग बहुत चिन्तित होंगे, इससे मैं तुरंत ताँगा जोड़कर भुजबंद देने चला आया। आप इसे सँभाल लीजिये।'

हम सब लोग प्रसन्न हो गये और ताँगेवालेकी ईमानदारीकी प्रशंसा करने लगे। मेरे भाई साहबने उसे ५० रु० इनामके देने चाहे, किंतु उसने नहीं लिये और कहा कि 'मैं ईमानको सोने-चाँदीके टुकड़ोंपर नहीं बेच सकता। मैं भुजबंद इसलिये नहीं लाया कि आप मुझे इनाम दें। मैं भगवान्‌को चारों ओर देखता हूँ। मुझे डर लगता है कि यदि मैं बेईमान हो गया तो भगवान्‌के न्याय-दरबारमें क्या उत्तर दूँगा।'

बहुत कहने-समझानेपर भी उसने इनाम नहीं लिया और सबको ईमानदारीका जीता-जागता सबक देकर वह ताँगेपर सवार होकर चल दिया।

सहृदयता

एक बार गोंडालनरेश स्व० श्रीभगवतसिंहजी और उनके कुँवर श्रीभोजराज मोटरमें किसी दूरके गाँव जा रहे थे। रास्तेमें एक जगह मोटर रुक गयी। दोनों नीचे उतरकर इधर-उधर टहलने लगे। बिलकुल सादी पोशाक थी, जल्दी कोई पहचान भी नहीं सकता था। पास ही एक बुढ़िया थेपड़ीका टोकरा भरे खड़ी थी। उसने समझा कोई किसान है और आवाज दी—'अरे भाई! जरा यह टोकरा मेरे सिरपर तो उठा दो।' श्रीभगवतसिंहजीने भोजराजसे कहा—'जरा सहारा लगा आओ।' उसके बाद तो उन्होंने वहाँ थोड़ी-थोड़ी दूरपर ऐसे थामले बनवा दिये कि कोई भी अकेली स्त्री उनपर अपना बोझा रखकर अपने-आप ही सिरपर ले लेती।

—जेठालाल कानजी भाईशाह

सच्चा शिक्षित कौन ?

मैं रहता तो हूँ नडियादमें, पर मेरा गाँव सरसवणी है। इससे बीच-बीचमें घर जाया करता हूँ। बरसातमें मोटर बंद रहती है, इससे पैदल जाना पड़ता है। गत बरसातमें मुझे एक बार सरसवणी जाना पड़ा। मैं सींहुजसे चला। कुछ दूर जानेपर मुझे प्यास लगी। पास ही खेतमें एक कुआँ था। मैं वहाँ गया। किसान झोंपड़ी डालकर वहाँ रहता था। मैं पहुँचा, उस समय वह काम कर रहा था। मैने कुएँसे जल निकालनेके लिये उससे डोल-डोरी माँगे। किसानने सहर्ष डोल-डोरी लाकर पानी निकाल दिया। जल पीकर मैंने खेती-बाड़ी और कुएँके विषयमें बात चलायी। मैंने कहा—'कुआँ नया ही बनवाया मालूम होता है, इसका जल अच्छा है।' उसने कहा—'हाँ जी, सभी लोग ऐसा ही कहते हैं।' यह सुनकर मैंने पूछा—'यह कैसे?' वह बोला—'मैंने इसका जल नहीं पीया है।' इसपर मैंने पूछा—'क्यों नहीं पीया?' उसने उत्तर दिया—'भाई! इस कुएँको करानेके लिये मैंने एक बनियेसे ब्याजपर रुपये लिये हैं और मैंने यह संकल्प कर लिया है कि जबतक पूरा ऋण नहीं उतार दूँगा, तबतक इस कुएँका जल नहीं पीऊँगा। अभी कुछ रुपये देने बाकी हैं, वे भी चुकता दे दिये जायँगे; परंतु तबतक मैं जल कैसे पी सकता हूँ?'

ऐसे उन्नत भावना-सम्पन्न किसानके प्रति मेरे हृदयमें बड़ा सम्मान उत्पन्न हो गया। आजकल समाचारपत्रोंमें पढ़ते हैं कि लोग पैसोंके लिये कैसे-कैसे प्रपंच रचते और बेईमानी करते हैं। शिक्षित कहलानेवाला वर्ग धनके लिये कुछ भी करनेमें नहीं हिचकता। तब मनमें यह प्रश्न उठता है कि कहाँ यह शिक्षित सुधरा हुआ वर्ग और कहाँ यह अपढ़ किसान? इनमें चरित्रवान् कौन है? सच्ची शिक्षा किसने प्राप्त की? (अखण्ड आनन्द)

भगवान् देना चाहते हैं तो छप्पर फाड़कर देते हैं

बात सन् १९४९ की है (मास और दिवस मुझे स्मरण नहीं)। उस समय मैं बीकानेर स्टेशनपर डिप्टी स्टेशनमास्टरके पदपर नियुक्त था। अप गाड़ी (संध्याके समय) बीकानेर रेलवे स्टेशनसे चलनेवाली थी। मैं ड्यूटीपर प्लेटफार्मपर खड़ा था। इतनेमें मेरे एक घनिष्ठ मित्र पं० श्रीदुर्गाप्रसाद, जो उन दिनों रेलवे ऑफिसमें क्लर्क थे और अब भी हैं, मेरे पास चले आये। वहाँ मेरी-उनकी विनोद-वार्ता होने लगी। बातों-ही-बातोंमें मेरे मुँहसे निकल पड़ा 'भगवान् देना चाहते हैं तो छप्पर फाड़कर देते हैं।' मेरी इस बातकी हँसी उड़ाते हुए उन्होंने भी विनोदमें ही कहा कि 'हम तो तुम्हारे भगवान्को तब जानें जब वे तुम्हें कहींसे अनपेक्षित पचास रुपये भेज दें।' मैंने अपने उसी विश्वासपूर्ण भावसे उत्तर दिया—'भगवान् चाहें तो कुछ भी असम्भव नहीं है।' उन्होंने मेरे इस उत्तरको उपेक्षाकी मुद्रासे सुना-अनसुना कर दिया। मैं भी गाड़ीको विदा करनेके कार्यमें संलग्न हो गया।

इधर भगवान्की अहैतुकी कृपाने तुरंत ही मेरे इस विश्वासको साकार रूप दिया। सन् १९३८-३९ में मैं लूनकरनसर स्टेशनपर स्टेशनमास्टर रहा था। उस बीचमें मैंने वहाँके गण्यमान्य सेठ नथमलजी बोथराके पुत्रको प्राय: दो मासतक अंग्रेजी पढ़ायी थी। तुरंत न तो मैंने उनसे कुछ शुल्क माँगा था, न मेरी ऐसी अभिलाषा ही थी। मैं तो प्रारम्भसे ही केवल स्वभावेन अपना

जीवन-लक्ष्य बनाकर जो कुछ मैं जानता हूँ उसके अनुसार किसी भी व्यक्तिको रेलवेका काम सिखाने तथा अंग्रेजी 'विषय' समझानेको प्रस्तुत रहता आया हूँ। अस्तु, उक्त सेठ साहब मेरी और श्रीदुर्गाप्रसादजीकी बात-चीतके दो ही मिनट पश्चात् अनायास ही कहींसे मेरे सामने आ खड़े हुए। मानो भगवान्‌ने ही मेरी उस विश्वासभावनाको सत्य प्रमाणित करनेके लिये उनको भेजा था। वे बोले—'बाबूजी! मेरा आपका कुछ हिसाब है।' यह सुनकर मैं अवाक्-सा रह गया। लूनकरनसर छोड़े मुझे दस वर्ष हो चुके थे। उनके पुत्रको पढ़ानेकी बातका तो मुझे स्मरण भी न रहा था। मैं तो उलटे यह समझने लगा कि कहीं यह न कह दें कि 'मैं तुमसे कुछ रुपये माँगता हूँ।' मैंने उसी आश्चर्यमुद्रासे पूछा—'कैसा हिसाब सेठ साहब! क्या आप मुझसे कुछ माँगते हैं?' उन्होंने हँसते हुए उत्तर दिया—'नहीं बाबूजी! नहीं। मुझे तो आपको कुछ रुपये देने हैं।' यह कहते हुए उन्होंने मेरे हाथपर ५० रुपयेके नोट रख दिये और कहा—'आपने मेरे लड़केको पढ़ाया था, उसका शुल्क है।' मैंने कुछ आनाकानी की; परंतु वे बोले—'यह तो आपकी मेहनतका है, आपको लेना ही पड़ेगा।' मैंने रुपये ले लिये और श्रीदुर्गाप्रसाद, जो कुछ ही दूरीपर वहीं खड़े थे, भगवान्‌के इस चमत्कारको देखकर चकित हो गये!

—लक्ष्मणप्रसाद विजयवर्गीय

विपत्तिहरण

'हम बारातमें सवा सौ व्यक्तियोंसे कम नहीं ला सकते!' भावी समधीके इन शब्दोंके साथ ही चिन्ताकी अमिट रेखाएँ मेरी मुखाकृतिपर अंकित हो उठीं; परंतु विवशता मेरे साथ थी। प्रभु-स्मरणके साथ ही जहरका घूँट पीते हुए, एक साथ उमड़ पड़नेवाले आँसुओंको रोकते हुए कहना पड़ा, 'अच्छा साहब' और विवाहतिथि निश्चित हो गयी।

समयानुसार मैं केवल २५ व्यक्तियोंके पक्षमें था, यद्यपि मेरी स्थिति इतनोंको भी केवल एक समय अल्पाहारमें ही निबटा देनेमात्रकी थी, परंतु सामाजिक कीड़ा होनेके नाते समाजका यह आग्रह मुझपर था।

'अच्छा' कह चुकनेके बाद अब चिन्ता थी व्यवस्थाकी। जिन व्यक्तियोंको मैं अपना समझे बैठा था और मुझे जिनपर दृढ़ विश्वास भी था, मैंने उनको स्थितिसे पूर्णतया अवगत करा दिया। कुछ मुझपर हँसे, कुछने बेवकूफ बताया, कुछेकने सहानुभूति भी दिखलायी, पर सबका संक्षिप्त उत्तर था, 'है ही नहीं, भाई क्षमा करें।'

ज्यों-ज्यों समय निकटतम होता जाता था, मैं सूखा जाता था। प्रश्न था सामाजिक इज्जतका; पर कहीं भी आशा-रश्मितक दृष्टिगोचर नहीं हो पा रही थी; सारांश 'प्रभु-स्मरण' के अतिरिक्त अब और कोई साधन अवशेष नहीं रह गया था।

मैं अपनी ड्यूटीपर जा रहा था; बसमें बैठा यही सोच रहा

था कि वहाँ जाकर लिख दूँगा, 'बहिनकी शादी अभी छुट्टियाँ न मिल सकनेके कारण नहीं कर सकूँगा'—इन्हीं विचारोंको दृढ़ कर पुनः प्रभु-चिन्तनमें मग्न हो गया!

अकस्मात् बस नसीराबाद स्टैंडपर रुकी, मैं गाड़ीसे उतर पड़ा। उतरते ही मेरे पूर्वके प्र० अ० श्रीगोवर्द्धनसिंहजी मेरी ओर ही आये। उनके पास आते ही उचित शिष्टाचार भी न हो सका कि आँखें स्वतः टप-टप बरसने लगीं; यह दृश्य देखकर वे भी स्तम्भित-से रह गये। आखिर मैंने सब बातें उनसे बतायीं, यद्यपि मेरी-जैसी ही उनकी स्थिति होनेके कारण मुझे शंका बराबर होती जा रही थी। मेरी बात समाप्त होते ही उन्होंने मेरे हाथपर......सौंप दिये और आप स्वयं न जाने कहाँके लिये और किस कामके लिये बसपर चढ़ गये। मैं अवाक् रह गया। चढ़नेके बाद उन्होंने हाथ हिलाया तब उनके मोती भी आँखोंसे बाहर निकल चुके थे। मैंने नीचा मस्तक किये ही उनमें साक्षात् विपत्तिहरण 'गोवर्द्धनधारी' के दर्शन किये। कुछ साहस बँधा, फिर जहाँ-कहीं जानेका साहस करता स्वतः उस गोवर्द्धनधारीका स्वरूप हृदयके अन्तरंगमें दिग्दर्शित हो उठता, तब फिर किसीने 'नहीं' नहीं किया; फलतः शादी सकुशल सम्पन्न हो गयी।

मेरे हृदयपटलपर वह विपत्तिहरण गोवर्द्धनधारी अब भी ज्यों-के-त्यों अंकित हैं।—महाप्रभु गोवर्द्धनधारीकी जय।

—जौहरीलाल जैन

मनुष्यका कर्तव्य

कुछ समय पहलेकी बात है, मैं और मेरे एक पारसी मित्र साइकिलद्वारा दिल्लीकी सैर करने गये थे। इन्दौरमें दीवाली मनायी और नये वर्षके दिन प्रातःकाल ही इन्दौरसे निकले। इन्दौरसे ग्यारह मील आगे गये थे कि मेरे मित्रकी साइकिलमें पंचर हो गया। हमलोग एक ओर बैठकर साइकिल ठीक करने लगे। पर कौन जानता था कि आधा घंटेका काम दो घंटेमें भी पूरा नहीं होगा। आस-पास कोई गाँव भी नहीं था कि कहींसे मदद मिल सके। इतनेमें एक भड़कीली मोटर हमारे पाससे निकली और पूरी चालसे आगे बढ़ गयी। थोड़ी दूर जाकर ही मोटर रुकी। हमारा ध्यान उस तरफ गया। हमने सोचा, मोटरमें कुछ बिगड़ा होगा। इतनेमें तो मोटर वापस घूमी और हमारे पास आकर ठहर गयी।

मोटरमेंसे एक गोरे साहब उतरे और 'मैं आपकी कुछ मदद कर सकता हूँ?' यों अंग्रेजीमें कहते हुए हमारे पास आ गये। हमने अपनी कठिनाई उनको बतलायी और वे हमारी मदद करने लगे। पंद्रह मिनटमें साइकिल ठीक हो गयी।

वे दिल्लीकी प्रदर्शनी देखकर सकुटुम्ब बम्बई जा रहे थे। साइकिल ठीक न होनेपर वे हमलोगोंको वापस इन्दौर पहुँचानेको तैयार थे, यह उन्होंने बताया। हमारे बार-बार मना करनेपर भी जाते समय उनकी पत्नी हमें एक दर्जन केले दे गयीं।

हमने उनका उपकार माना; तो उन्होंने जो शब्द कहे, वे हमारे मनमें अब भी रम रहे हैं—'यह तो मनुष्यका कर्तव्य है।'

—अब्बास अहमदाबादी

परार्थ आत्मत्याग

कुछ वर्ष पहलेकी बात है—मैं उन दिनों आगरामें था। 'क्रान्ति' के स्वनामधन्य सम्पादक श्रीधर्मेन्द्रजी क्रान्तिकी पेशीसे लौटते हुए राजामण्डी स्टेशनपर टहल रहे थे। उसी समय मथुरानिवासी एक ब्राह्मण, जो पत्नीके स्वर्गवासके पश्चात् उसके फूल प्रयागमें प्रवाहित करके अपनी चौदह वर्षीय कन्याके साथ उसी स्टेशनमें मथुरा जानेवाली गाड़ीकी प्रतीक्षामें थे, अपना टिकट दिखाते हुए श्रीधर्मेन्द्रजीसे बोले,—'बाबूजी! मथुरा जानेवाली गाड़ी कब मिलेगी?' आपने बड़े सरल-स्वभावसे कहा—'आपकी गाड़ी (तीसरी लाइनपर खड़ी ट्रेनकी ओर संकेत करते हुए) तो सीटी दे चुकी है, चलनेहीवाली होगी। उस स्थानसे प्लेटफार्म बदलनेके लिये पुलसे होकर जाना पड़ता था। पुल दूर था, अतएव वे प्लेटफार्मसे उतर पटरी क्रास करते हुए अपनी गाड़ीतक पहुँचनेका प्रयास करने लगे। पिताके हाथमें बिस्तरेका एक बंडल था और कन्याके हाथमें एक साधारण झोला। पिता आगे थे। वे दोनों लाइनें पारकर अपनी गाड़ीतक तो पहुँच गये, किंतु पुत्री दूसरी पटरीके मध्य जाकर भौंचक्की-सी खड़ी रह गयी। चूँकि पहली पटरीपर एक गाड़ी खड़ी थी और तीसरी पटरीपर मथुरा जानेवाली गाड़ी, इसलिये दूसरी पटरीपर आनेवाली मालगाड़ी प्लेटफार्मसे दीख न सकी, वास्तवमें कन्या जिस पटरीके बीच खड़ी थी, उसीपर आती गाड़ी देखकर सुध-बुध खो भौंचक्की-सी रह गयी। श्रीधर्मेन्द्रजीने गरजकर कहा—'बेटी! बढ़ जाओ या लौट जाओ!' किंतु उसे ज्ञान कहाँ! रुकनेवाली गाड़ीका इंजन बढ़ता ही गया। देखते-ही-देखते धर्मेन्द्रजी अपनी जान हथेलीपर ले प्लेटफार्मसे लम्बी छलाँग मार कूद ही तो पड़े। उन्होंने चाहा था कि पुत्रीको फेंककर स्वयं

भी पटरी पार कर जायँगे, किंतु जैसे ही वे कन्याके पास कूदकर पहुँचे, कन्याने उन्हें इतने जोरसे जकड़ लिया कि उनकी सारी शक्ति वहीं क्षीण हो गयी। फिर भी उन्होंने कन्याको पटरीके बाहर तो फेंक ही दिया, किंतु स्वयंको न सँभाल सके और इंजनसे टकराकर बेहोश हो पटरीके पार गिर पड़े। अबतक इंजन पर्याप्त धीमा हो चुका था। इस घटनाको सभी अवाक् खड़े देखते रह गये, पुलिस और अपार जनभीड़के साथ मैं भी जा घुसा। वे ब्राह्मण-देवता भी पकड़ लिये गये, जेबसे निकले हुए कागजोंको देखकर इन्सपेक्टर पुलिसने बताया कि ये 'क्रान्ति'-सम्पादक श्रीधर्मेन्द्रजी हैं। 'क्रान्ति' का ग्राहक होने तथा सम्पादक-बन्धु होनेके कारण मेरा हृदय एकाएक भर आया। इसके प्रथम मैंने उनकी कीर्ति कई स्थलोंपर सुनी थी, किंतु उस दिन उनका प्रत्यक्ष सराहनीय एवं साहसी कार्य देखकर मैं बड़ा ही प्रभावित हुआ। वे तत्काल चिकित्सालय भेजे गये। धन्य हैं ये और धन्य हैं वे ब्राह्मण-देवता भी, जिन्होंने चिकित्सालयमें रहकर अपनी कन्या तथा शेष परिवारको मथुरासे बुलाकर उनकी भरपूर सेवा की। मुझे भी उनकी सेवाका तभी कुछ अवसर हाथ लगा। योग्य चिकित्सकके महाप्रयासपर जब वे कुछ होशमें आये, बड़ी प्रसन्नता हुई डॉक्टरको अपनी कर्तव्यपरायणतापर।

वे अब स्वस्थ तो अवश्य हैं, किंतु आज भी उस चोटके फलस्वरूप वे जोरसे बोल नहीं पाते, तेजीसे चल नहीं सकते, मस्तिष्क-शक्ति, नेत्र-ज्योति एवं दन्तावलियोंपर बहुत ही आघात पहुँचा है। अब वे बहुत ही शान्तिप्रिय, गम्भीर एवं एकान्तप्रिय बनते जा रहे हैं। ईश्वरसे हम उनके दीर्घजीवी होनेकी कामना करते हैं। धन्य है उनका जीवन! —कृष्णचन्द्र पालीवाल

नारी नारायणी

शारदा बहिन हमारी पड़ोसी हैं। क्रूर विधाताने अठारह वर्षकी सुकुमार अवस्थामें ही उनके सुहागको छीन लिया। जीवनमें लगी हुई ठोकरोंसे उनमें आश्चर्यजनक सहनशीलता आ गयी है। उनके एक पुत्र था। पुत्रकी भावी आशामें वे दुःखके जहरकी घूँट हँसते-हँसते पी जातीं। परंतु ईश्वरने उनके इस आशादीपको भी बुझा दिया। उनका पुत्र दुर्घटनामें मारा गया। उन्होंने ट्रकके ड्राइवरकी जिस प्रकारसे रक्षा की, वह हमारे समाजके लिये उज्ज्वल गौरवकी बात है। यह उज्ज्वल गाथा इस प्रकार है—

उत्तरायण बालकोंका प्रिय उत्सव है, उस दिन बालकोंका पतंगके पीछे दौड़नेका बावलापन शराबके नशेके समान बड़ा तीव्र बन जाता है।

नीले आकाशमें दो बड़े सुन्दर पतंगोंमें पेच लग गया। दोनों पक्षके पतंग उड़ानेवाले सावधानीसे डोरा खींच रहे थे। मृत्युके समीप पहुँचे हुए मनुष्यकी जीवन-डोरीके समान पतंगोंका डोरा अब टूटा तब टूटा हो रहा था।

एक पतंग कटा, तुरंत पतंगोंके पीछे बच्चे दौड़ने लगे और 'काटो....काटो....पकड़ो-पकड़ो' का शोर मचाते हुए आगे बढ़ने लगे। दीपक (शारदा बहिनका पुत्र) आकाशमें पतंगकी ओर देखता हुआ दौड़ा जा रहा था। दौड़ता-दौड़ता वह सड़कपर आ पहुँचा। सामनेसे मालसे भरी हुई एक ट्रक पूरे वेगसे आ रही थी। ड्राइवरको भी ध्यान नहीं रहा। जब ड्राइवरका ध्यान दीपककी तरफ गया, तब दीपक और ट्रकके बीचमें पाँच-सात फुटका ही अन्तर रह गया था। ड्राइवरने ब्रेक लगाया, परंतु ब्रेक काबूमें नहीं आ सका और दीपककी पतंग प्राप्त करनेकी अभिलाषा अधूरी ही रह गयी। ट्रक उसके ऊपरसे निकल गयी!

मुकद्दमेके फैसलेका दिन था। सब लोग शारदा बहिनका बयान सुननेके लिये आतुर थे। वे बयान देनेवालोंके कटघरेमें आकर खड़ी हो गयीं और कभी ड्राइवरकी ओर तथा कभी न्यायाधीशकी ओर देखने लगीं। उनका मन विचारके झूलेपर झूल रहा था। लम्बे विचारके बाद उनके होठ खुले। उनके शब्दोंने नारी-हृदयका परदा उठा दिया।.... 'मैं गरीब विधवा हूँ, मेरा आधार मेरे उगते हुए बच्चेपर ही था। दीपक मेरा जीवन था। मेरा श्वास था। पर बहुत बार मनुष्यको जो अच्छा लगता है, वह ईश्वरको कहाँ लगता है? ईश्वरको कुछ दूसरी ही बात अच्छी लगी और उन्होंने मेरे बच्चेको छीन लिया। मेरे एकमात्र आधारके चले जानेसे मैं निराधार हो गयी। जैसे मेरा आधार मेरे दीपकपर था, वैसे ही इन भाई (ड्राइवर)-के कुटुम्बका आधार भी इन भाईपर ही होगा। इनके भी स्त्री होगी। छोटे बच्चे होंगे, परंतु इनको यदि जेलमें ढकेल दिया जाय तब? इनका कुटुम्ब निराधार हो जायगा। मुझे निराधारताका अनुभव है।

जो कुछ बना, उसमें तो मेरे भाग्यका ही दोष है। इन भाईको जेलमें ढकेल देनेसे क्या मुझे मेरा दीपक वापस मिल जायगा? कभी नहीं। फिर मैं किसलिये इनके कुटुम्बको निराधार बनाऊँ। किसलिये इतना बखेड़ा? मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ, आप इनको छोड़ दें।'

शारदाके ये वाक्य सुनकर न्यायाधीशतक आश्चर्यमें डूब गये। सब इस नारीको नारायणीके रूपमें देखने लगे। शारदा बहिन अपनी जबानीमें पक्की रहीं।

अन्तमें ड्राइवरको छोड़ दिया गया। एक नारी-हृदयको संतोष मिला। इस नारायणीको सभीने मन-ही-मन नमस्कार किया।

आजके आदर्श संत

आधुनिक युग भोगप्रधान है, किंतु इस भोगप्रधान युगमें भी त्यागका जीवन अपनानेवाले दो-चार महापुरुषोंका अस्तित्व इस ओर संकेत करता है कि सनातन जीवनके मूल्य कभी पूर्णतया लुप्त नहीं होते। फ्रांससे एक ऐसे ही महापुरुषका आगमन इस देशमें हुआ है। कलकत्तेमें अपने एक भाषणके तारतम्यमें श्रीपायरने अपने त्यागमय जीवनके अनुभवोंपर प्रकाश डालते हुए 'चीथड़ा सम्प्रदाय' की कहानी जनताके सामने रखी है। श्रीपायर एक धनी पिताके पुत्र थे और उनके पिता एक प्रसिद्ध मिलमालिक थे। केवल उन्नीस वर्षकी आयुमें श्रीपायरने अपने पितासे अपना उत्तराधिकार माँग लिया। पिताने पुत्रके अनुरोधको स्वीकार किया और उनके हिस्सेकी पैतृक सम्पत्ति उन्हें दे दी। श्रीपायरने इस विराट् पैतृक सम्पत्तिको केवल दो घंटोंमें गरीबोंमें बाँट दिया। इसके बाद उन्होंने त्याग और सेवाका जीवन शुरू किया। जीवन-निर्वाहके लिये वे सड़कपर चीथड़े बीनकर उन्हें बेच लेते थे और उदरपोषणके बाद जो कुछ रहता था, उसे गरीबोंमें बाँट देते। इस कार्यने उन्हें एक नयी प्रेरणा प्रदान की। उन्होंने धीरे-धीरे एक दलकी स्थापना की और उसका नाम रखा 'चीथड़ा सम्प्रदाय'। इस दलके सदस्य सड़कोंपर चीथड़े बीनकर बेचने लगे और इस प्रकार प्राप्त होनेवाले धनको दरिद्र-नारायणकी सेवामें लगाने लगे। धीरे-धीरे इस आन्दोलनने इतना सुन्दर रूप धारण कर लिया कि अच्छे-अच्छे लोग इस सेवा-कार्यकी ओर आकृष्ट होने लगे। भारतके लोगोंको सम्भवतः इस

बातपर विश्वास करना कठिन होगा कि चीथड़े बीनकर इस दलने फ्रांसमें गरीबोंके लिये पिछले कुछ वर्षोंमें २,२५० सुन्दर मकानोंका निर्माण किया है। यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि सद्भावना होती है तो कोई कार्य असम्भव नहीं होता। फ्रांसमें इस संतका कितना बड़ा प्रभाव है—इसका एक प्रमाण यह है कि हालमें ही इन्होंने रेडियोपर जनतासे गरीबोंके लिये धन अथवा वस्त्रकी एक अपील की थी। इस अपीलमें उन्होंने एक होटलका पता दिया था, जहाँ उसी दिन उन्हें कुछ दान प्राप्त हुआ था। केवल तीन सप्ताहके अंदर होटल दानके रूपमें आनेवाले पैकेटों तथा रुपयेके लिफाफोंसे भर गया था। इन तीन सप्ताहोंमें दानके रूपमें जो कुछ आया, उसका मूल्य पाँच करोड़ रुपयेके लगभग था। यह छोटी-सी घटना इस बातका एक प्रमाण है कि त्यागी मनुष्यके प्रति जनता आज भी आकर्षित होती है। आवश्यकता केवल इतनी है कि उसके मनमें वस्तुतः लोक-कल्याणकी भावना हो और उसके विचारों तथा आचरणमें वास्तविक पवित्रता हो। इस साधनाके आगे अन्य सारी साधनाएँ हतप्रभ हो जाती हैं। कोई कारण नहीं कि जो प्रयोग फ्रांस-जैसे भोग-प्रधान देशमें सफल हुआ, वह भारतमें सफल न हो। यहाँ इस प्रकारके प्रयोगके लिये अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल परिस्थितियाँ हैं। आवश्यकता केवल इतनी ही है कि इस क्षेत्रमें श्रीपायर-जैसे पवित्र और लोकसेवारत व्यक्ति अग्रसर हों।

—बल्लभदास बिन्नानी

देवीकी कृपा

आजादी मिलनेपर क्वेटामें साम्प्रदायिक दंगे चल रहे थे। वहाँपर एक मुसलमान होटल-मालिकके यहाँ एक वफादार हिंदू नौकर था। उसका नाम था चोइथराम।

एक दिन कुछ दंगाइयोंने होटल-मालिक और उसकी बीबीको कुरानकी शपथ दिलायी और चोइथरामको कत्ल करनेको कहा।

रातको होटल-मालिकने सोते हुए चोइथरामका काम तमाम करनेका विचार किया। तब उसकी बीबीने उसे बहुत समझाकर कहा कि 'ऐसी बेसिर-पैरकी शपथ वास्तवमें शपथ नहीं कही जा सकती तथा हर एक मनुष्यका वास्तवमें धर्म अपने स्वामिभक्त नौकरकी रक्षा करनेका है, विश्वासघात करके उसको यमलोक भेजनेका काम तो जघन्य पाप है।' फिर भी मूढ़ होटल-मालिकके कानोंपर जूँतक नहीं रेंगी।

तब होटल-मालिककी बीबीने धर्म-संकट देख पतिसे नौकरके लिये चाय बनानेकी आज्ञा माँगी। पतिसे कहा कि 'मैं नौकरको मरते समय पहले चाय पिला दूँ, फिर आप नौकरको मृत्युके घाट पहुँचावें।' अब होटल-मालिक बिस्तरपर पड़ा सुस्ताने लगा।

मौका देखकर बीबीने चोइथरामको जगाकर उसे क्वेटासे नौ-दो ग्यारह हो जानेको कहा। वह भाग छूटा।

जोधपुर आनेपर चोइथरामने उस देवीके प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए बताया, 'मेरा जीवित शरीर उस देवीकी ही दया है।'

व्यसनके बन्धनसे मुक्ति

रमणलाल हमारे पड़ोसी थे। सीढ़ीसे गिर जानेके कारण उनके छोटे लड़के निरंजनके पैरकी हड्डी टूट गयी थी। पायधुनीपर हाड़-वैद्यको दिखलाया तो उन्होंने तुरंत अस्पताल ले जानेकी राय दी।

रमणलाल सवा सौ रुपये मासिकके नौकर थे। उनकी घबराहटका पार नहीं रहा। अस्पतालका खर्च सहन करनेकी न उनकी स्थिति थी, न शक्ति।

परंतु डॉ० देसाईके साथ उनकी कुछ जान-पहचान थी। (डॉक्टर देसाई उनके मालिकोंके फेमिली डॉक्टर थे।) वे तुरंत ही डॉ० देसाईके यहाँ पहुँचे और सारी बातें बतायीं। डॉ० देसाईने निरूको अस्पतालमें भर्ती करा दिया।

डॉ० देसाई सर्जन थे। वे नगरके बड़े अस्पतालमें काम करते थे। उनका हाथ ऑपरेशनपर इतना 'सेट' हो गया था कि जहाँ रोगीको यह पता लग जाता कि उसको डॉ० देसाईकी देख-रेखमें रखा गया है, वहीं उसका आधा रोग तो कम हो जाता। वे सर्जन होनेके साथ ही सज्जन भी थे। सोनेकी थालीमें लोहेकी कीलकी तरह मनुष्यमें सद्गुण होनेपर भी एकाध दुर्गुण भी होता ही है। डॉ० देसाई सद्गुणोंके सागर थे, परंतु उस सागरमें दुर्गुणका एक नन्हा-सा झरना भी बहता था। वह झरना था व्यसनका—सिगरेट उनके लिये प्राण थी। सिगरेटका व्यसन उनके साथ जोंककी तरह इस प्रकार चिपक गया था कि सिगरेटके बिना वे ऑपरेशन ही नहीं कर पाते।

आज निरूका ऑपरेशन होनेवाला था। निरूको सबेरे नौ बजे ऑपरेशन थियेटरमें ले जाया गया। बाहर बैठे हुए रमणलाल और उनकी पत्नीके कलेजे धक-धक कर रहे थे। 'अब क्या होगा?' का भाव उनके चेहरेपर स्पष्ट दिखायी दे रहा था। गहरी चिन्ताके बादलोंने उनके मुखका तेज हर लिया था। उनकी आँखें और कान 'ऑपरेशन थियेटर' की ओर लगे थे। ठीक सवा दस बजे डॉ० देसाई ऑपरेशन सम्पन्न करके बाहर निकले। उनके मुखपर विजयका स्मित फरक रहा था।

डॉ० देसाईने कहा—'रमणभाई! चिन्ता मत करो, ऑपरेशन अच्छी तरह हो गया है।' यह सुनकर रमणभाईके शरीरमें चेतना आयी।

निरूको एक महीने बाद अस्पतालसे छुट्टी मिली।

× × ×

दो महीने पहले निरूके ऑपरेशनके समय रमणलालके चेहरेपर जैसा भाव था, वैसा ही भाव आज भी उनके मुखपर छाया है। वे जल्दी-जल्दी डॉ० देसाईके यहाँ आये। डॉ० देसाई अखबार पढ़ रहे थे। रमणलालकी गम्भीर मुख-मुद्रा देखकर डॉ० देसाई भी विचारमें पड़ गये। रमणलालने कहा—'डॉक्टर साहब! निरूके पैरमें कुछ दिनोंसे सूजन आ रही है।'

रमणलालके घर आकर डॉक्टरने निरूको देखा। कुछ देर विचार करके उन्होंने कहा—'रमणभाई! निरूको फिर अस्पतालमें भर्ती करना पड़ेगा।'

निरूको पुनः अस्पतालमें भर्ती किया गया। उसके पैरका एक्सरे लिया गया। फोटो देखकर डॉक्टर गम्भीर हो गये। उन्होंने

रमणलालको बुलाया और कहा—'रमणभाई! मेरे हाथसे कभी नहीं बन सकता, ऐसा काम इस बार बन गया है। निरू मेरी भूलका शिकार हो गया। मैं जब निरूका ऑपरेशन कर रहा था उस समय मेरी सिगरेटकी राख निरूके पैरके अंदर पड़ गयी थी। इसीलिये अब फिर ऑपरेशन करना पड़ेगा। प्रायश्चित्तरूपमें मैं आजसे सिगरेटको अपने जीवनमें सदाके लिये दूर कर रहा हूँ। और हाँ, मेरी भूल भी मुझे ही भोगनी चाहिये, अतः इस बारके ऑपरेशनका तथा अस्पतालका जितना खर्च होगा उतना मैं दूँगा। चिन्ता मत करना।

रमणलाल तो आश्चर्यसे देखते ही रह गये और मन-ही-मन कह उठे—'यह डॉक्टर है या देवता!'

जब ऑपरेशन करके डॉ० देसाई ऑपरेशन थियेटरसे बाहर निकले तब उनके मुखपर विजयका स्मित नहीं था, परंतु व्यसनके बन्धनसे छूटनेकी पहली सीढ़ीपर चढ़नेका आनन्द था।

—मधुकान्त भट्ट

पहलेसे बचानेकी व्यवस्था

बात कुछ वर्ष पूर्वकी है, जब मेरे लघु भ्राता माध्यमिक विद्यालय बड़ोदियामें कक्षा ८ में अध्ययन करते थे। भगवान्‌की महान् कृपासे इनका भगवान् श्रीकृष्णकी सेवा करना जन्मसे ही नियम-सा था। बड़ोदियामें एक छोटे कमरेमें रहते थे; इनके साथ दो और साथी थे। बड़ोदियामें स्थित श्रीदाऊजीके मन्दिरका दर्शन करना, मण्डली (सत्संग)-में बैठना एवं धार्मिक पर्वोंपर कुछ सेवामें हाथ बँटाना आदि ये किया करते थे। एक बार रात्रिके समय जब ये सो रहे थे, तब अचानक ऊपर जमी हुई लकड़ियोंका ढेर खिसक गया और ऊपरसे सभी लकड़ियाँ गिर गयीं, पर इसके कुछ समय पूर्व ही ये सोते हुए ऐसे घबराये हुए उठे, मानो इनको किसीने हाथ पकड़कर अलग गिरा दिया हो। इनका वहाँसे अलग हटना हुआ और लकड़ियोंका गिरना हुआ। स्थान संकीर्ण होनेके कारण इन्होंने जलानेकी लकड़ियाँ इन्हीं लकड़ियोंसे पटाव-सा कर ऊपर जमा दी थीं। इनके सोनेके स्थानपर एक टार्च रखी हुई थी, वह लकड़ियोंसे बिलकुल पिचक गयी। उतनी आवाज होनेपर दो साथी जो दूर सो रहे थे, वे उठ आये। उन्होंने अत्यन्त घबराकर इनको आवाज दी, देखा तो बिलकुल आरामसे बाल-बाल बचे हुए बैठे हैं। सभीकी स्थिति अवाक्-सी हो गयी। यह प्रसंग मुझे सुनाते-सुनाते वे गद्‌गद हो गये। मैं बहुत प्रभावित हुआ कि भगवान् किस समय रक्षा करते हैं। यदि इनकी निद्रा न खुली होती तो इनका बचना असम्भव ही था, परंतु वहाँ तो बचानेकी व्यवस्था पहलेसे ही थी। —पुरुषोत्तम पण्ड्या 'साहित्यरत्न'

अनजाने पापका बदला

पापोंके अपार समूहको लेकर जिस समय मैं कुम्भ-मेलेके लिये तैयार हुआ, उस समय पल-पलपर तामसीवृत्ति अपना अधिकार बढ़ाती चली जा रही थी। प्रारम्भमें ही ऐसी-ऐसी अड़चनें खड़ी हो गयीं, जो कुम्भ-मेलेके प्रस्थानका अवरोधन करने लगीं। फिर भी पापमोचनके लिये मैं चल पड़ा! कानपुर स्टेशनपर इतनी अधिक भीड़ थी कि उसे देख वहींसे लौटनेका इरादा करने लगा। किंतु स्नानकी प्रबल इच्छा जाग्रत् हो उठी और चार बजेके लगभग एक ट्रेनके दरवाजेपर खड़े-खड़े ही संगमकी यात्राके लिये चल पड़ा। मनौरी स्टेशनके करीब कुछ जाटोंने मुझे डिब्बेसे नीचे उतरनेके लिये लाचार कर दिया। अतः उक्त स्टेशनपर मैं एक निराश्रितकी भाँति अन्धकारमें इधर-उधर टहलने लगा। इतनेमें एक भीड़ आयी और उसीके साथ मैं भी फिर उसी डिब्बेमें प्रविष्ट हो सका। इलाहाबाद स्टेशनपर गाड़ी रुकी और रात्रिके दो बजेके करीब यात्रियोंके विशाल समूहके साथ स्नानके लिये संगम-तटपर रवाना हो गया।

अभी सबेरा होनेमें काफी देर थी। अस्तु, मैं गंगाके तटपर कम्बल ओढ़कर बैठ गया। सहस्त्रों यात्री स्नान करके लौट रहे थे, किंतु मेरे पाप मुझे स्नान करनेसे रोकते रहे और मैं घुटनोंमें सिर रखे सोता रहा। सूर्योदय होनेपर स्नान कर सका। इधर-उधर घूमता हुआ बाँध रोडके करीब खड़ा हुआ, नागा—साधुओंका दृश्य देखता रहा।

इधर भीड़ बढ़ती गयी और नागा—साधुओंके जाते ही

स्नानार्थी और स्नान करके जाते हुए मनुष्यसे त्रिवेणी-क्षेत्र व्याप्त हो गया। मैंने अपने चारों ओर दृष्टि दौड़ायी। कुछ आदमी तारके खम्भोंपर चढ़े जा रहे थे। कुछ भीड़से दबते हुए पुकार उठे—'मुझे बचाओ, मैं दब रहा हूँ।'

मैंने भी समझ लिया कि मेरी मृत्यु असमयमें आ गयी। यहाँ कोई मेरा साथी भी नहीं है, जो मेरे घरमें खबर कर सकेगा। अतः मैंने किलेके पास भूमिशायी हनुमान्जीसे जीवन-रक्षाकी प्रार्थना की।

भीड़में ठेल-पेल हो रही थी और मानवसमूह एक तरंगित सागरकी भाँति हिलोरें ले रहा था। मेरे समीप ही दस-बारह मनुष्य ढेर हो गये और अन्तमें मैं भी गिर पड़ा। उस समय मेरा बायाँ हाथ एक अधेड़ और शक्तिहीन मनुष्यकी गर्दनपर पड़ा। मैंने बिना उसकी परवा किये हुए उठ खड़े होनेके लिये पूरी शक्ति लगायी और भीड़को गिरनेसे रोकते हुए उठ खड़ा हुआ।

मेरे इस अनजाने पापने अपना रूप स्थिर कर लिया; क्योंकि मैंने केवल अपने जीवन-रक्षार्थ ही प्रयत्न किये थे। 'दूसरा मरे अथवा जिये' इसकी मुझे चिन्ता नहीं रही। सम्भव है वह आदमी उठ खड़ा हुआ हो, किंतु उसकी याद मुझे बराबर सताती रही और मेरा हृदय मुझे चुपके-चुपके कोसता रहा। यद्यपि मैं जान-बूझकर उसके ऊपर नहीं गिरा था, किंतु फिर भी अनजानेका यह पाप याद आनेपर सशंकित कर देता था।

कालान्तरमें मैं उसे बिलकुल भूल गया। इधर मेरा एक-वर्षीय लड़का चेचकके प्रकोपसे मर गया। मुझे हार्दिक दुःख हुआ।

मैंने अपने जीवनके पापोंपर एक विहंगम-दृष्टि दौड़ायी तो

प्रयागके कुम्भ-मेलेवाले व्यक्तिकी स्मृति जाग उठी। कारुणिक भावनाओंसे हृदय भर गया। वह बालक बहुधा, जब मैं उसे गोद लेता था तो वह मेरी दाढ़ी और मूँछपर हाथ फेरकर पहचाननेकी कोशिश किया करता था। अतः अन्तर्ध्वनि होने लगी। 'ऐ दाढ़ी और मूँछोंवाले आदमी! मैं तुझे पहचानकर तेरे घरपर बदला लेनेके लिये आया हूँ। तूने मेरी उपेक्षा कुम्भ-मेलेमें की थी।'

मृत्युके पाँच दिन पहले वह चबूतरेकी सीढ़ीपर लुढ़कता हुआ गिर पड़ा, जैसे वह घरसे जानेका संकेत कर रहा हो। मैं तुरंत दौड़ पड़ा और उसे जिसे कुम्भ-मेलेमें न उठा सका था, गोदमें उठा लिया। हृदयमें दुश्चिन्ताकी रेखा खिंच गयी कि क्या यह हँसता हुआ स्वस्थ बालक बाहर जानेकी तैयारीमें है।

मृत्युके दिनपर मेरे हृदयमें नाना प्रकारकी व्यथाएँ उभर रही थीं। वह अनोखे पश्चात्ताप और अभावोंसे ग्रस्त था। शामको मैं स्कूल समाप्त करनेके पश्चात् तेजीसे घरकी ओर जा रहा था। कौओंके झुंड उड़-उड़कर मार्गपर बैठकर पुनः उड़ जाते थे। गाँव पहुँचनेपर मेरा हृदय पुकार उठा कि 'कोई मुझसे यह न कह दे कि तुम्हारा लड़का मर गया है' किंतु दरवाजेपर रोनी सूरत बनाये लोग बैठे थे। मैं सीधा घरके अंदर प्रविष्ट हुआ, वहाँ मैंने उस लड़केको देखा जिसकी आँखें उलट रही थीं। उसने भी मुझे पहचाना। मैंने उसे उठाकर कंधेपर लगा लिया। उस मरणासन्न प्राणीने अपना हाथ मेरी दाढ़ी और मूँछोंपर फिराकर मेरे हृदयके घावको हरा कर दिया।

मैंने उसकी अन्तिम यात्राके लिये गंगाजल, तुलसी और रामके चित्रको उसके सामने उपस्थित कर दिया और रामायणको

सिरहाने रखकर उसी बायें हाथपर, जिसके द्वारा कुम्भके अवसरपर अपरिचित व्यक्तिकी गरदनका सहारा लेकर खड़ा हुआ था, उस लड़केका सिर रख लिया। वह आरामसे सोने लगा। मैंने गंगाजलका एक चम्मच उसे पिलाया। गल-गलका शब्द होने लगा। उसके सिरको थोड़ा ऊँचा किया, जिससे जल तो प्रविष्ट हो गया, किंतु गरदन छोड़नेपर वह लुढ़क पड़ी। इस प्रकार यह अनजानेका पाप पुत्ररूप धारणकर करोड़ों आदमियोंके बीचमें मुझे पहचानकर अपना बदला लेकर चला गया। मैं उसके साथ अन्तिम क्रियाके लिये नदीके तटपर गया। उसका मुख बदल चुका था और जहाँतक मुझे स्मरण आता है, ठीक उसी अधेड़ व्यक्तिका-सा मुख था, जो कुम्भ-मेलेमें मानव-ढेरपर गिरा था और जिसकी गरदनका सहारा लेकर मैं खड़ा हुआ था। इस प्रकार अनजानेका पाप भी समय आनेपर अपना बदला चुका लेता है। इससे मनुष्योंको सावधान होनेकी आवश्यकता है।

—रामाधीन 'शान्त'

परम आश्चर्यप्रद त्याग

बम्बईकी एक पुरानी घटना है। सेठ जगमोहनदास एक दिन अपने स्वर्गीय पिता श्रीव्रजवल्लभदासजीके कागजोंकी पेटी खोलकर उसके कागज देख रहे थे। देखते-देखते उन्हें एक बड़ा लिफाफा मिला। उसमें एक मकानके कागजात-पट्टे आदि, एक विक्रयपत्र तथा उसके साथ एक पत्रकी नकल थी। जगमोहन-दासजीने उनको देखा और पत्र पढ़ा। पत्रमें लिखा था—

भाई द्वारकादासजीसे व्रजबल्लभदासजीकी जय श्रीकृष्ण। आपपर एक झूठा मुकद्दमा लग गया और सम्भव है कि उसमें आप हार जायँगे (यद्यपि आप सच्चे हैं, इससे ऐसी सम्भावना तो नहीं है) तो आपके मकानपर कुर्की आ सकती है। इसीसे सोलीसिटरोंकी रायसे आपने अपना मकान जिसका पट्टा तथा कागजात आपने मुझको देकर दो लाख बावन हजारमें मेरे नाम बेच दिया है और बाकायदा सेलडीड (विक्रयपत्र) रजिस्टर्ड हो गया है। असलमें यह फर्जी बेचान है, आपने मुझसे एक पैसा भी नहीं लिया है। बेचानमें जो स्टाम्प तथा सोलीसीटरका खर्च लगा है, वह भी आपने ही दिया है। केवल रक्षामात्रके लिये आपने मेरे नामपर मकान कर दिया है। मकान सर्वथा आपका है तथा आपका ही रहेगा। मेरे या मेरे उत्तराधिकारी किसीका इसपर अधिकार नहीं होगा। आपकी स्थिति जब ठीक होगी और आप जब चाहेंगे, तभी यह मकान आपके नामपर पुनः ट्रांसफर करा दिया जायगा। इसमें मेरे तथा मेरे किसी उत्तराधिकारीको कभी कोई आपत्ति नहीं होगी।

—हस्ताक्षर × ×

इस पत्रको पढ़ते ही सेठ जगमोहनदासकी आँखोंमें आँसू आ गये। उन्होंने अपनी पत्नी लक्ष्मीबाईको बुलाकर पत्र सुनाया और आँसू बहाते हुए कहा—'मेरा कितना दुर्भाग्य है, जो मैंने पंद्रह वर्षतक इस पेटीके कागजोंको नहीं देखा। पिताजी और ताऊजी दोनों ही स्वर्गवासी हो गये। न मुझको इस बातका कुछ पता था और न भाई गिरधरदास ही इसे जानता था। वह तो छोटा था, जानता ही कैसे और ताऊजीकी मृत्यु बहुत पहले ही हो गयी थी। ताई मर ही चुकी थी। मैं जानने लायक था, परंतु पिताजीकी अकस्मात् हृदयकी गति रुकनेसे मृत्यु हो गयी और वे मुझसे कुछ भी न बता सके। मुझे पता होता तो क्यों भाई गिरधरदास तकलीफ पाता, क्यों हमारे दिये हुए पाँच सौ रुपये मासिक लेनेकी उसे जरूरत पड़ती। छः सौ रुपये तो खर्च बाद देकर मकानका भाड़ा ही आता है। अब तो एक दिनकी देर नहीं करनी है। आज ही गिरधरदासको बुलाकर उसका मकान उसे सौंप देना है।'

लक्ष्मीबाई भी वस्तुतः लक्ष्मी ही थी। उसने कहा—'यह तो बहुत ही अच्छा हुआ; भगवान् श्रीनाथजीने बड़ी कृपा की जो आपने कागज देख लिये। नहीं तो, स्वर्गीय पिताजीकी आत्मा कितनी दुःखी होती और स्वर्गीय ताऊजीका भी यह ऋण कैसे उतरता? धरोहर रहनेसे हमलोगोंकी भी पता नहीं क्या दुर्गति होती। आप अभी स्वयं गिरधरदासके पास जाइये। मैं भी साथ चलूँगी। उसे बुलाइये मत। ऋणी तो हमलोग हैं और उससे क्षमा माँगकर उसकी तथा उसके बाल-बच्चोंकी आशीष प्राप्त कीजिये। केवल मकान ही नहीं देना है।

कम-से-कम एक लाख रुपये नगद और देकर इस ऋणसे मुक्त हो जाइये।'

धर्मभीरु धर्मपत्नीकी बात सुनकर सेठ जगमोहनदास हर्षातिरेक-से गद्‌गद होकर बोले—'लक्ष्मी! तुम साक्षात् लक्ष्मी हो। तुम्हारी जगह दूसरी कोई स्त्री होती तो कभी यह सलाह नहीं देती। क्यों भेद खोलने देती और क्यों आजकी कीमतसे केवल छः लाखका मकान ही लौटानेकी बात नहीं, एक लाख रुपये और देकर ऋण-मुक्त होनेकी राय देती। तुम्हारी-जैसी पत्नी मिली, यह मेरा बड़ा सौभाग्य है और मुझपर भगवान्‌की बड़ी ही कृपा है।'

तुरंत ही दोनों पति-पत्नी सारे कागजात तथा एक लाखका चेक लेकर गिरधरदासके घर पहुँचे। चाचाजीको चाचीसमेत आये देख, गिरधरदास और उसकी पत्नीने आनन्दमें भरकर बहुत स्वागत किया।

चाचा-चाचीका बहुत ही सद्‌व्यवहार था भतीजे तथा उसके कुटुम्बके साथ। इन्होंने गिरधरदासको एक दूकान भी करवा दी थी तथा पाँच सौ रुपये मासिक शुरूसे ही खर्चके लिये देते थे। विवाह-शादीका भी सारा खर्च ये ही करते थे और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि कभी जरा भी अहसान जताना तो दूर, मुँह भी नहीं खोलते थे। किसीको पतातक नहीं था कि पाँच सौ रुपये मासिक जगमोहनदास लम्बे समयसे दे रहे हैं। जगमोहनदास और उनकी पत्नीके सिवा पैढ़ीके मुनीमोंतकको इसका पता नहीं था।

चाचा-चाचीने गिरधरदास और उनकी पत्नीको पास बैठाकर सारी बातें सुनायीं। पट्टा, कागजात सामने रखकर पिताजीके लिखे पत्रकी नकल पढ़ायी। (गिरधरदासको तो पता नहीं था।

यद्यपि मूलपत्र उसके घरमें ही रखा था, पर उसने कभी खोजा-देखा ही नहीं था।) और एक लाखका चेक देकर यह कहा कि 'बेटा! भूलके लिये क्षमा करना। हमलोग तुम्हें कुछ दे नहीं रहे हैं। तुम्हारी ही चीज तुम्हें मिल रही है। भगवान्‌की कृपासे ही यह प्रसंग बन गया है। यह भी भगवत्कृपा ही है कि तुम्हारा मकान सुरक्षित है और तुम्हारा यह चाचा तुम्हारे पुण्यात्मा दोनों दादाजीके पुण्यसे इस समयतक इस स्थितिमें है कि तुम्हारी चीज तुम्हें लौटा सकता है।' यों कहकर दोनों रोने लगे।

गिरधरदास और उनकी पत्नीकी तो विचित्र हालत थी। वे अपार हर्षके साथ बड़े आश्चर्यमें डूब रहे थे। क्या अलौकिक दृश्य है! वे बोल नहीं सके। चाचा-चाचीके चरणोंपर गिर पड़े। दोनोंने दोनोंको उठाकर हृदयसे लगाया। गिरधरदासने कहा—'चाचाजी! हम तो अबतक आपके जिलाये ही जी रहे हैं। घर तो पिताजीके मरनेके पहले बर्बाद हो चुका था। आप ही अबतक सँभालते रहे। हम आपके ही हैं, आप हमें यह सब क्या दे रहे हैं— × × ×

चाचा-चाचीके बहुत आग्रह करनेपर कागजात और चेक गिरधरदासने लिये। जिस युगमें छल-बल-कौशलसे भाईका धन भाई हड़पनेको प्रयत्नशील है तथा इसीमें गौरव मानता है, उस युगमें इस प्रकारकी घटना निश्चय ही अत्यन्त आश्चर्यप्रद और परम आदर्श है।

—बनमालीदास

सास या जननी

कुछ वर्ष पहलेकी बात है। रामपुर छोटा-सा गाँव है। उसमें रामचन्द्र सेठका नाम दिपता था। खासी सम्पत्ति, सब प्रकारका सुख। गायें, भैंसें पर्याप्त संख्यामें। मलाईभरा दूध, अमृत-सी छाछ और घरके घीका शुद्ध आहार—इससे घरमें सभी स्वस्थ थे। मनके उदार थे, इससे आस-पासके गाँवोंमें चारों ओर उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। उनके पुत्रका विवाह हुए अभी थोड़े ही दिन हुए थे। पुत्रवधू खानदानी कुटुम्बकी सुशील कन्या थी।

घरमें बहुत दूध होता, इसलिये रोज ही मक्खन उतरता और उसका घी भी बनता। आज चूल्हेपर अद्धा टीन चढ़ी थी, जिसमें लगभग दस सेर मक्खन था। बाहर ओसारेमें सेठका पुत्र पूरी टीन लिये बैठा था, उसमें भी घी भरना था, रसोईमें सास-बहू दोनों थीं—बीचकी कोठरीमें ससुरजी बैठे माला फेर रहे थे। मक्खनका घी हो गया। तब सासने बहूसे कहा—'मैं अद्धा बाहर रख आती हूँ, तुझको घूँघट निकालकर जाना पड़ेगा।' परंतु आर्यवधू सासको कैसे जाने देती? वह स्वयं अद्धा लेकर घूँघट निकालकर चली। बीचकी कोठरीमें घुसी ही थी कि न जाने कैसे साड़ीका छोर पगमें अटक गया और हाथसे अद्धा गिर पड़ा। सारा घी बह चला, स्वयं गिरते-गिरते मुश्किलसे बची। घी बहुत गरम था, पर सौभाग्यसे वह कहीं जली नहीं। ससुर आवाज सुनते ही बोले—'खमा बेटा!' और रसोईमेंसे सास दौड़ी आयी और बहूको बाँहमें भरकर बोली 'बेटा! कहीं जली तो

नहीं है न? तुझे कहीं चोट तो नहीं लगी? घी ढुल गया, इसकी जरा भी चिन्ता नहीं है, कल फिर घी तैयार हो जायगा। तू चिन्ता मत करना।'

इतना सुनते ही बहू सासके चरणोंपर गिर पड़ी, हर्षातिरेकमें उसकी पलकें भीग गयीं, वह कुछ बोल नहीं सकी, पर मन-ही-मन कहने लगी—'ये मेरी सासजी मेरी माँसे भी बढ़कर हैं। कहीं पीहरमें ऐसा हुआ होता तो कुछ भी नहीं तो माँ उलाहना जरूर देती।

ऐसी सास-बहू घर-घरमें हों तो इस पृथ्वीपर स्वर्ग ही उतर जाय।

—झबेर भाई बी० सेठ, बी० ए०

सहानुभूति और सेवा

सन् १९०८ की बात है। मेदिनीपुरमें एक अंग्रेज जज थे। उनका नाम था मि० किली। उनका जीवन बहुत ही ईमानदारीका तथा संयमी था। उन्होंने अपने घरके कामके लिये एक चपरासी रख लिया था। वह नौकर दिनभर साहबका काम किया करता।

एक दिन वह चपरासी बाहरसे डाक लेकर आया था। साहबके बँगलेमें प्रवेश करते ही एक पागल कुत्तेने उसके पैरमें काट खाया। साहब बरामदेमें बैठे देख रहे थे। वे तुरंत खड़े होकर दौड़े और चपरासीका पैर हाथमें लेकर मुँहसे चूसने लगे। पागल कुत्तेका विष चूसते जायँ और थूकते जायँ, परंतु साहबको जहर चूसनेकी आदत नहीं थी और मुँह भी गीला था। आधे घंटे बाद जब सारा विष चूस लिया गया, तब वह साहबको चढ़ने लगा। उन्होंने नौकरको आराम करनेके लिये छुट्टी दे दी और स्वयं हँसते-हँसते डॉक्टरके पास पहुँचे।

डॉक्टरने उनसे कहा—'आप इस बखेड़ेमें क्यों पड़े?' तब मि० किलीने उत्तर दिया कि 'बेचारा चपरासी पागल कुत्तेका इलाज करानेकी स्थितिमें नहीं था। मैंने इसलिये जहर चूस लिया कि मेरी इलाज करा सकने लायक आर्थिक स्थिति है। चपरासीको पैसा देता तो वह शायद उन्हें बचा लेनेके लोभमें इलाज न कराता। मेरे इलाजके पैसे तो मुझे खर्च करने ही पड़ेंगे। इस प्रकार एक गरीबकी सेवा हो गयी।'

मि० किली सच्चे अर्थमें चपरासीके लिये 'नीलकण्ठ' थे।

—सुकेतु

अशरणके शरणदाता

सन् १९५६ की बात है। मैं एक फौजी विभागमें सिविलियन कर्मचारी हूँ तथा वहाँकी एक छोटी-सी मजदूर-यूनियनका कार्यकर्ता भी। उक्त विभागके स्थानीय सर्वोच्च अधिकारीसे मेरी साधारण-सी बातपर अनबन हो गयी और वे उच्चाधिकारी मुझे हर प्रकारकी हानि पहुँचानेपर उतारू हो गये। उनके संकेतसे उक्त कार्यालयके लगभग साढ़े तीन हजार मजदूर मेरी एक जानके पीछे पड़ गये। मुझे जानसे मार डालनेकी बात सोची जाने लगी। कई बार लोगोंने मुझे अपमानित करने एवं मारने-पीटनेको घेर भी लिया, पर उन्हीं लोगोंके हृदयमें दयाका संचार हो जानेसे मैं बाल-बाल बचता रहा। उस दशामें मुझे ऐसा कोई अपना नहीं दिखायी देता था कि जिसके सामने जाकर मैं रोऊँ और शिकायत करूँ। अन्तमें अपना भला इसीमें सोचकर कि अशरणके शरणदाता परमात्मा हैं, मैंने उन्हींकी शरण ली और कारखानेसे एक सप्ताहकी छुट्टी लेकर मानसकी इस चौपाई—

दीन दयाल बिरिदु संभारी । हरहु नाथ मम संकट भारी॥

—के सम्पुटके साथ अत्यन्त आर्तभावसे नियमित पाठ प्रारम्भ कर दिया। पाठके समाप्त होनेके ठीक दूसरे ही दिन वे अधिकारी अपने दो अन्य बड़े-बड़े सहायकोंके साथ स्वयं मेरे पास मिलने आये और सब झगड़ा समाप्त करनेको कह गये। यही नहीं, जो मजदूरोंकी भीड़ मेरे विरुद्ध बाजारमें

किसी पागल स्त्रीके पीछे लगे हुए लड़कोंके झुंडकी तरह अपमानित करनेके लिये पीछा करती थी, वही पाठ समाप्तिके बाद नौकरीपर जानेमें मेरे लिये जय-जयकारके नारे बुलंद करने लगी और वे उच्चाधिकारी तो मेरे इतने निकट-सम्बन्धी बन गये कि मेरे साथ छोटी-मोटी दावत और मेले-ठेलोंके सैर-सपाटेमें भाग लेने लगे।

'बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!'

—'भरैया'

ईमानदारीकी प्रेरणामूर्ति

पहलेकी बात है—

मैं अपने यहाँ आये हुए एक मेहमानके साथ बाड़ीमें नहाने गया था। नहा-धोकर लौटते समय हमलोगोंने बाड़ीमेंसे ९-१० केले, ३-४ सीताफल, कुछ अमरूद तथा नीबू चोरी-छिपाईसे ले लिये, घर वापस लौटनेपर मेहमानने मुझसे पूछा—'मधुभाई ! मेरे सोनेके बटन आपके पास हैं।'

मैंने कहा—'ना भाई, नहाते समय आपने कपड़ोंमें ही रखे थे न?'

'हाँ रखे तो थे कपड़ोंमें ही, पर वे जाते कहाँ?' यों कहकर मेहमान महोदयने अपने कपड़ोंको फिरसे देखा, पर बटन नहीं मिले।

मैंने कहा—'तो फिर बटन बाड़ीमें ही रह गये। किसीकी नजर चढ़ गये होंगे तो मिलने मुश्किल हैं।'

मेहमानने कहा—'चलिये, बाड़ीमें फिर पता लगायें।'

हमलोग बाड़ी जाकर वहाँके रखवाले गंगूभाईके पास गये। हमलोगोंका मुँह चिन्ताग्रस्त तथा हमारी अस्तव्यस्त-सी हालत देखकर वह खुद ही जलके पंपकी कोठरीसे बाहर आकर हमसे पूछने लगा—'बटनकी खोजमें आये दीखते हैं?'

हमलोगोंने अधीर होकर उससे पूछा—'हाँ तुम्हें बटन मिलें हैं क्या?'

उसने 'हाँ' कहा, तब हमें शान्ति मिली। हमलोगोंने उसको बटनकी निशानी बतायी तब उसने बटन दे दिये। फिर उसने

चाय पिलाकर कुछ मीठे उपदेशकी बातें कहीं—'अब आगेसे ऐसी गफलत और उतावली मत करना। उतावला सो बावला। यह तो खैर बटन ही थे; इनसे भी बहुत अधिक कीमतकी वस्तु कहीं भूल जाय और वह यदि किसी बुरे आदमीके हाथ लग जाय तो फिर गयी वस्तुका मिलना कठिन है।'

ऐसे ईमानदार पुरुषके सामने हमारे मस्तक झुक गये और साथ ही बाड़ीमेंसे चुराकर ले गयी हुई चीजोंके लिये हमारे दिलपर बड़ी चोट लगी। 'कहाँ यह अशिक्षित ईमानदार आदमी और कहाँ हमारे-सरीखे शिक्षित और उच्च श्रेणीके पुरुष। इस अशिक्षित परंतु शुद्ध हृदयके पुरुषने सोने और पत्थरको समान समझा और हमारी नीयत बिलकुल मामूली चीजोंके लिये ही बिगड़ गयी।'

हमारे मनमें कई प्रश्न आये—बाड़ीमेंसे ये चीजें हमने किसलिये चुरायीं? क्या पैसे देकर इन चीजोंको नहीं खरीदा जा सकता था? गंगूभाईसे कहकर लेते तो क्या वह नहीं देता? अथवा क्या चोरी की हुई और मुफ्तमें मिली हुई चीजोंके खानेमें विशेष आनन्द आता है? इन प्रश्नोंका भी उत्तर मेरे पास नहीं था।

हमने गंगूभाईसे 'चोरीकी बात कही और उससे माफी माँगी। इस प्रसंगके बादसे मैं गंगूभाईको अपने जीवनकी ईमानदारीके लिये प्रेरणामूर्ति मानता हूँ।'

—मधुकान्त भट्ट

शिव तथा संत–कृपासे रुपये मिल गये

मेरे स्वर्गीय पितामहकी एक हजार रुपयेके करीबकी रकम किन्हीं सज्जनके यहाँ जमा थी। उन सज्जनका व्यापार भी अच्छी तरह चलता था। पर "Riches have wings" के अनुसार उन्हें व्यापारमें घाटा लगा और दिवाला भी निकल गया। जिनका-जिनका उनपर रुपया था, सभी माथेपर हाथ धरकर बैठ गये। मेरे दादाजीकी स्थिति बड़ी गम्भीर थी, उनका तो मानो हार्टफेल हुआ जा रहा था। महाराज स्वामीजी श्रीउत्तमनाथजीको इसका पता लगा। उन्होंने मेरे पितामहको बुलाया और कहा—'शुरू! फिकर क्यूँ करे है, थारा रुपया थाने मिल जासी।' (क्यों चिन्ता करता है तेरे रुपये तुझे मिल जायँगे।) मेरे दादाजीने कहा—'पर उनका तो दिवाला निकल चुका है।' उत्तमनाथजीने मृदु स्वरमें कहा—'दिवालो निकल्यो तो निकलवा दे। भाग माथे भरोसो राखे या नी राखे। आज पाणी रे सिवाय कीं मत लीजै, सारो दिन '**ॐ नमः शिवाय**' रो जाप करजे, सुबे थने रुपया घरे मिल जावेला।' (दिवाला निकला है तो निकलने दे। भाग्यपर भरोसा रखना है या नहीं? आज जलके सिवा और कुछ मत लेना और दिनभर '**ॐ नमः शिवाय**' का जप करना। सुबह तुझको अपने घरपर ही रुपये मिल जायँगे।) मेरे दादाजीको पूज्य नाथजीके वचनोंपर विश्वास था। उन्होंने नाथजीके कहे अनुसार पारायण किया। रातको नींद भी कुछ कम ली।

ब्राह्ममुहूर्तमें वे सहसा चौंके। किसीने पुकारा—'शुरू! आडो

खोल' (शुरू! किवाड़ खोल) वे भागे और दरवाजा खोल दिया। व्यापारीका भेजा हुआ आदमी आया था। उसने कहा कि 'आप रुपये गिन लीजिये ब्याजसहित।' मेरे पितामहकी खुशीका पार ही नहीं था। भगवन्नाममें तन्मयतासे कामना तत्काल सिद्ध हो गयी। यह घटना भले ही हास्यास्पद प्रतीत होती हो, पर जो श्रीउत्तमनाथजीके सम्पर्कमें आये हैं, वे तो कम-से-कम इसे मानेंगे ही।

—सुन्दरलाल बोहरा

बहू शुभाकी शुभ वृत्तिका सुपरिणाम

कुछ वर्ष पूर्वकी घटना है। बंगालके दिनाजपुर जिलेके एक गाँवमें एक रामतनु नामक ब्राह्मण रहते थे। उनकी स्त्रीका नाम प्रमिला था। एक पुत्र प्रद्योतकुमार था, जो कलकत्तेसे ग्रेजुएट होकर आया था और उसे अच्छी नौकरी मिलनेकी आशा थी। बगलके गाँवमें एक ब्राह्मण सद्‌गृहस्थ प्रेमनाथके एक बड़ी सुशीला कन्या थी। लड़केकी बी० ए० में सफलता सुनकर प्रेमनाथजीने चेष्टा करके अपनी कन्या शुभाका विवाह उससे कर दिया। रामतनुकी स्त्रीका स्वभाव बहुत ही उग्र था एवं वह अत्यन्त कठोर हृदया थी। उसकी शैवालिनी नामकी एक लड़की भी माँके स्वभावकी थी और प्रद्योतमें भी माँकी प्रकृतिका ही अवतरण हुआ था। जबसे शुभा घरमें आयी, तभीसे शैवालिनी उसके विरुद्ध माँको लगाया करती, कहती—'यह बड़ी कुलच्छनी है, घरको बर्बाद कर देगी और माँ अपने लड़के प्रद्योतका सदा कान भरा करती। बेचारी शुभाका बुरा हाल था, दिनभर उसे अपनेको तथा अपने सीधे-सादे माता-पिताको गालियाँ सुननी पड़तीं। घरका सारा काम तो गधेकी ज्यों करना ही पड़ता। होते-होते सास, पति और ननद—तीनों उसके लिये साक्षात् यमराजका रूप बन गये। वह बेचारी चुपचाप सब सहती रहती। स्वभाव बिगड़ जानेके कारण प्रद्योतकी कहीं नौकरी नहीं लगी। इससे वह और भी जला-भुना रहता। घरमें आपसमें भी उनके लड़ाई-झगड़े होते रहते। वृद्ध रामतनु बड़े भद्र पुरुष थे। वे

चुपचाप सुनते रहते। मन-ही-मन परिवारकी दुर्दशापर दुःख करते हुए भी अपना अधिक समय भजनमें लगाते। उनके पास कुछ पूँजी थी, उसीसे घरका काम चलता।

एक दिन माँ-बेटेमें लड़ाई हो गयी। पुत्र प्रद्योतने माँको भद्दी गालियाँ दीं और वह मारनेको दौड़ा। शुभासे नहीं रहा गया, उसने उठकर पतिके हाथ पकड़ लिये और कहा—'स्वामिन्! आपकी माता हैं, देवस्वरूपा हैं। इनका पूजन करना और इन्हें सुख पहुँचाना ही आपका धर्म है तथा इसीसे सबका कल्याण है इत्यादि।' शुभाकी यह हरकत देखकर प्रद्योत आगबबूला हो गया और माँकी ओरसे हटकर पत्नीपर चढ़ आया, हाथ छुड़ाकर बड़े जोरोंसे दो-चार घूँसे लगाये और बोला—'चुड़ैल! तू हमारे बीचमें बोलनेवाली कौन? बड़ी ज्ञानवाली उपदेश देने आयी है। यह माँ राँड़ तेरी है कि मेरी है। मैं अपनी माँसे चाहे जैसा व्यवहार करूँगा, तुझसे क्या मतलब!' शुभा बेचारी घूँसे खाकर चुपचाप अलग बैठ गयी।

इतनेमें ही तमककर प्रमिला (सास)-ने कहा—'बेटा! सच ही तो है। यह चुड़ैल हमलोगोंके बीचमें बोलनेवाली कौन होती है? इसकी माँ राँड और भड़ुए बापने इसे यही सिखाया होगा कि 'पतिको सीख दिया करो।' ऐसी औरतें बड़ी कुलच्छनी होती हैं। इनका तो घरमें रहना ही घरके लिये बर्बादीका कारण है। तुमने अच्छा किया जो इसकी मरम्मत कर दी। मेरे तो एक सहेली थी। उसकी बहू भी इसी चुड़ैलकी तरह ज्यादा बोलती थी। एक दिन उसने अपने बेटेको समझाया। बेटा बड़ा आज्ञाकारी और धर्मात्मा था। उसने पहले तो उसकी खूब

मरम्मत की और इसपर भी जब नहीं मानी तो माँकी सलाहसे एक दिन बेटेने उसके सोते समय तमाम बदनपर मिट्टीका तेल छिड़क दिया और दियासलाई लगा दी। राँड़ तुरंत ही जलकर खाक हो गयी। हर्रे लगा न फिटकरी, कुछ ही दिनोंमें इन्द्रकी परी-सी नयी बहू आ गयी। बेटा! ऐसी औरतें इसी कामकी हैं।

माँकी बात सुनकर बड़े उत्साहसे बेटी शैवालिनी भाईसे बोली— 'हाँ-हाँ भैया! माँ ठीक कहती है। लातका देवता बातसे थोड़े ही मानता है।'

प्रद्योत और भी उत्तेजित हो गया। उसके क्रोधकी आगमें माँ तथा बहिनके शब्दोंने मानो घृतकी आहुति डाल दी। उसने दौड़कर शुभाके सिरपर घूँसे मारे और कहा—'सुन लिया न, अब जरा भी चीं-चपड़ की तो माँका बताया उपाय ही किया जायगा! खबरदार!

फिर तीनों बहुत बके-झके—बेचारी निरीह शुभा सुबक-सुबककर—चुपचाप रोती हुई सब सुनती रही और मिट्टीके तेलकी आगसे जल मरनेको तैयार होने लगी।

वृद्ध रामतनु सब सुन रहे थे, वे बड़े साधु-स्वभाव थे, पर आज उनसे नहीं रहा गया। इस कुत्सित अत्याचारको उनकी आत्मा सहन नहीं कर सकी। उन्होंने खड़े होकर बड़े जोरसे झिड़कते हुए अपनी पत्नी प्रमिलासे कहा—'चाण्डालिनी! तू मालूम होता है साक्षात् पिशाचिनी है। निरपराध बालिकापर, जो बेचारी देवकन्याके सदृश सर्वगुणसम्पन्न और सुशील है, तुमलोग इतना भयानक अत्याचार कर रहे हो। यह नीच प्रद्योत भी तुम्हारे साथ हो गया है। तुमलोग इसको तथा इसके साधु-

स्वभाव माँ-बापको गालियाँ देकर बहुत बड़ा पाप कर रहे हो। इस छोकड़ी शैवालिनीकी भी बुद्धि मारी गयी। यह नहीं सोचती कि इसके ससुरालमें इसकी भी यही दुर्गति हो सकती है। तब माँ-बेटी दोनोंकी क्या दशा होगी। बेचारी लड़की सात्त्विक माता-पिताको छोड़कर तुम्हारे घर आयी है और तुमलोग राक्षसकी तरह उसे खानेको दौड़ रहे हो और उसे जलाकर मारनेकी सोच रहे हो। धिक्कार है। याद रखना, गरीब दीनकी हायसे सर्वनाश हो जायगा।'

पतिकी बात सुनकर प्रमिला कड़ककर बोली—'बस, बस रहने दो तुम्हारी तो बुद्धि सठिया गयी है। तभी तो इस नीच जवान छोकड़ीकी हिमायत कर रहे हो। रखो न इस देवकन्याको अपने पास। हम माँ-बेटे तो अपना काम चला लेंगे।

अब तो रामतनुकी आत्मा तिलमिला उठी। बड़े साधु-स्वभाव होनेपर भी उनके मुँहसे सहसा निकल गया—'चाण्डालिनी! जा, तेरे और इस तेरे दुष्टचरित्र राक्षस बेटेके शीघ्र ही गलित कुष्ठका रोग हो जायगा और तू दुःखदर्दसे कराहते-कराहते मरेगी। यह लड़की भी सुख नहीं पायेगी × × ×।'

रामतनु बोल ही रहे थे और न मालूम उनके मुँहसे क्या निकलनेको जा रहा था कि शुभाने दौड़कर उनके चरण पकड़ लिये और वह चीख मारकर गिर पड़ी। फिर चरण पकड़कर बोली 'पिताजी! पिताजी! आप क्या बोल रहे हैं। कसूर तो मेरा है। मैं न बोलती तो इतना काण्ड क्यों होता। मेरे ये पतिदेव ही मेरे देवता हैं, मेरे भगवान् हैं और ये माताजी, जो मेरे भगवान्की माँ हैं, मेरे लिये परम पूजनीय हैं। पिताजी! इन लोगोंका जरा

भी कष्ट मैं सहन नहीं कर सकती। इनको गलित कुष्ठ होगा तो मैं कैसे जीऊँगी। मुझपर दया करो, क्षमा करो पिताजी! आप दयालु हैं.......।' बहूकी बात काटकर प्रमिलाने चिल्लाकर कहा—बड़ी सिफारिश करनेवाली आयी है। जान गयी मैं, यह बूढ़ा और तू दोनों मिले हुए हो। हमलोगोंके पीछे लगे हो। पर चिड़ियाकी बीटसे कहीं भैंस मरती है। इसके शापसे हमारा क्या होगा। देखती हूँ पहले तुमलोग मरते हो कि हमें कोढ़ होती है।

शुभा कुछ नहीं बोली। वह ननदके लिये भी ससुरसे कुछ कृपाभिक्षा चाहती थी, पर अब बोल नहीं पायी। रोने लगी। रामतनु उठकर बाहर चले गये। उन्हें अपने क्रोधपर पश्चात्ताप था। तीनों माँ-बेटे-बहिन अलग एक कमरेमें चले गये।

× × ×

विधिका विधान, कुछ ही वर्षों बाद प्रमिला और प्रद्योतको गलित कुष्ठ हो गया और शैवालिनीका पति पागल होकर पागलखाने भेज दिया गया। अब प्रमिला और प्रद्योत दोनोंके पश्चात्तापका पार नहीं रहा। उधर शुभाकी दशा तो सबसे अधिक दयनीय हो गयी। वह रात-दिन रोती तथा सास-पति एवं ननदके दुःखमें अपनेको कारण मानकर महान् खेद करती हुई बार-बार भगवान्से कातर प्रार्थना करती—सास-पतिके रोगनाशके लिये और ननदोईकी स्वस्थताके लिये। दिन-रात सब घृणा छोड़कर वह तन-मनसे सास-पतिकी हर तरहसे सेवामें लगी रहती।

गाँवमें एक सिद्ध महात्मा रहते थे— श्रीकपिल भट्टाचार्य। एक दिन शुभा उनके स्थानपर जाकर चरणोंमें पड़कर रोने लगी तथा उनसे सब हाल सविस्तार कह सुनाया। महात्माका हृदय

द्रवित हो गया। उन्होंने कहा—'बेटी! तुम धन्य हो। इनके पाप तो बहुत प्रबल हैं, परंतु तुम्हारी सद्भावनासे तुम्हारे स्वामी शीघ्र ही रोगमुक्त हो जायँगे और तुम्हारे अत्यन्त अनुकूल होंगे। तुम्हारा जीवन सुखी होगा। उन्हें केवल चने खिलाओ, चालमोगरेका तेल लगाओ और एक सिद्धौषधि देकर कहा कि यह खिलाओ। तीन महीनेंमें रोगसे छुटकारा मिल जायगा। परंतु सास अच्छी नहीं होगी, उसका रोग बढ़ेगा और वह मर जायगी। पर तुम्हारी सद्भावनासे परलोकमें उसकी दुर्गति नहीं होगी। तुम्हारे ननदोईका पागलपन भी मिट जायगा। तुम्हारी सद्भावना तथा इन तीनोंके सच्चे पश्चात्तापसे ही भगवत्कृपासे यह फल होगा।.......... पर यह याद रखना, तुम भी आगे चलकर सास बनोगी। कहीं ऐसा न हो कि सास बनकर बहूके प्रति दुर्भाव करने लगो। यद्यपि सब सास बुरी नहीं होतीं, तथापि सासमें वह मिठास नहीं होती, जो माँमें होती है। बहुत मीठी सास भी कुछ कड़वापन रखनेवाली ही पायी जाती हैं। होना चाहिये सासको अधिक मिठासवाली, क्योंकि उसे परायी बेटीको बेटी बनाकर उसपर स्नेह करना है। इसलिये बहूपर बेटीसे भी अधिक प्यार करना चाहिये। वह बेचारी अपने बापके घरको छोड़कर तुम्हारे यहाँ आती है। वह अपना दु:ख भी किसीसे नहीं कह सकती और तुम यदि पिशाचिनीकी भाँति उसका खून चूसने लगती हो तो तुम्हारी दुर्गति कैसे नहीं होगी। याद रखना चाहिये, बहूको सतानेवाली सास नरकोंमें जाती है और उसे सूकरीकी योनि प्राप्त होती है। मैंने यह सभी सासमात्रके लिये कहा है। तुम कभी भी ऐसी नहीं हो सकती। तुम तो कौसल्या-सरीखी आदर्श सास होओगी।

साथ ही पतियोंको भी याद रखना चाहिये, वे अपनी पत्नीको कभी गाली भी न दें, हाथको कभी उठावें ही नहीं। जो पति अपनी पत्नीको मारता है, वह अगले जन्ममें स्त्रीयोनिमें जाकर जवानीमें विधवा होता है।'

कहना नहीं होगा कि कुछ ही दिनोंमें प्रद्योत रोगमुक्त हो गया। प्रमिला कष्ट भोगती हुई मर गयी, पर वह मरी पश्चात्तापकी आगमें जलती हुई तथा मुक्तकण्ठसे शुभाकी बड़ाई करती और उसे आशीर्वाद देती हुई। शैवालिनी भी पतिके स्वस्थ होनेसे सुखी हो गयी। तीनोंके बड़े पाप थे, पर शुभाकी परम शुभ वृत्तिसे परिणाम मंगलमय हो गया। प्रद्योतकी बड़ी अच्छी नौकरी लग गयी और उन दोनोंका जीवन धन-सम्पत्ति-संतति-सन्मति आदिसे सर्वांग सुखपूर्ण हो गया।

—बिमलेन्दु चटर्जी

गरीबीमें ईमानदारी

गरमीकी छुट्टियोंमें मैं घाटकोपर गया था। वहाँ हमारी दूकानपर नियमित आनेवाले एक शिक्षक मित्रने यह घटना सुनायी थी—

मैं जब नया-नया अध्यापक होकर स्कूलमें आया था, तबकी बात है। मैं दसवें क्लासमें संस्कृतकी घंटी ले रहा था। संस्कृत-श्लोकोंपर पाठ देनेमें लगा था। इसी बीच आवाज सुनायी दी—'मैं अंदर आ सकता हूँ—महाशयजी!'

'हाँ' स्वीकृति मिलते ही एक पंद्रह वर्षका विद्यार्थी मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। उसके कपड़े ही उसकी गरीबीकी गवाही दे रहे थे। नंगे पैर, सुन्दर बदन, पर चेहरेपर अकथनीय वेदना फैली हुई। उसने करुणाके भावसे धीरेसे मुझसे कहा—

'सर! पाँचेक रुपयेकी सहायता करेंगे.........?'

पैसेकी बात सुनते ही एक बार तो मैं सहम ही गया, पर फिर सावधान होकर मैंने धीरेसे पूछा—'क्यों, क्या करोगे?'

सर! आज फीस भरनेकी अन्तिम तारीख है। मैं अबतक फीस नहीं भर सका—इसलिये क्लासटीचरने मुझको 'गेट आउट' कर दिया है। सर! 'इतनी-सी मदद करें तो.....तो पाँच-छः दिनोंमें मैं रुपये लौटा दूँगा।' नीचा सिर किये बड़े करुणस्वरमें उसने कहा।

जो कुछ भी हो, मैं एक शिक्षक था। इतने विद्यार्थियोंके (और सो भी दसवें क्लासके ही विद्यार्थियोंके) सामने मुझसे

'ना' नहीं कहा गया। मैं इस विद्यार्थीसे सर्वथा अपरिचित था, तो भी परिस्थितिवश मैंने जेबसे पाँच रुपये निकालकर उसके हाथपर रख दिये।

आभार मानता हुआ विद्यार्थी चला गया। कुछ क्षणोंतक तो मैं उस विद्यार्थीकी सभ्यता, नम्रता, वाक्पटुता आदिपर विचार करता रहा, पर उसी समय मनमें संदेहका कीड़ा खलबला उठा। चित्त तर्क-वितर्कोंसे भर गया। पर मैं इस ओर ध्यान न देकर अपने पढ़ाईके काममें लग गया।

देखते-देखते चार दिन बीत गये; पर उस विद्यार्थीके तो फिर दर्शन ही नहीं हुए। मैं रोज उसकी राह देखता। मेरा संदेहका कीड़ा मजबूत हो गया। अन्तमें मैंने उस वर्गमें जाकर खोज की तो मालूम हुआ कि वह विद्यार्थी चार-पाँच दिनोंसे स्कूलमें ही नहीं आता। मेरी आँखोंके सामने पाँच रुपयेका नोट नाचने लगा।

मैं पता लगाने लगा। विद्यार्थियोंने मुझे अपनी-अपनी राय दी। मैंने सोचा—ये ठीक कहते हैं, उस विद्यार्थीने मेरे सीधेपनका लाभ उठाया होगा। ये सब मेरी अपेक्षा उससे परिचित भी अधिक हैं। उनकी बात सच मानकर मैं निराश होकर चुपचाप अपने काममें लग गया।

इस घटनाको लगभग दस दिन बीत गये। मैं उकताये हुए चित्तसे स्कूलमें आकर आरामकुर्सीपर पड़ा समाचारपत्र पढ़ रहा था। इसी समय मेरे कानमें आवाज आयी—'मैं अंदर आ सकता हूँ, महाशयजी!'

मैंने कहा—'हाँ।'

मैंने समाचारपत्रकी आड़से देखा, वही लड़का है जो मुझसे पाँच रुपये उधार ले गया था। मैंने उसको बुलाया और वह धीरे-धीरे कमरेमें आ गया। काँपते हाथसे पाँच रुपयेका नोट देते हुए उसने कहा—

'सर! देर हो गयी, इसके लिये क्षमा चाहता हूँ।' मुझसे यन्त्रवत् बोला गया—'स्कूलमें क्यों नहीं आते?'

'सर!.........' कहते ही उसका कण्ठ गद्गद हो गया।' घरमें माँ बीमार थी! डॉक्टरने कहा—रोग भयंकर है। इन्जेक्शनोंकी जरूरत है। परंतु इन्जेक्शनके पैसे मैं कहाँसे लाऊँ? मैं गरीब हूँ इसलिये मुझपर कोई विश्वास नहीं करता। किसीने एक पाई नहीं दी। ऐसी विषम परिस्थितिमें मैं क्या करता। मैं घबरा उठा। इधर माँकी स्थिति भयानक होती जा रही थी। अन्तमें मैं आपके पास आया। सच्ची बात कहते मुझे शर्म आ रही थी, इससे मैंने फीसका झूठा बहाना बनाकर आपसे रुपये माँगे और आपने विश्वास करके दे भी दिये। परंतु....'

'परंतु क्या'

'परंतु माँ....गयी।' यों कहते-कहते बच्चा फफककर रो पड़ा। मैंने उसकी पीठ थपकाकर उसे शान्त किया। उसने आँसू पोंछते हुए कहा—'फिर सर! मैं स्कूलमें कैसे आ सकता था। स्कूलकी दो महीनेकी फीस चढ़ गयी, मैं कहाँसे दूँ? अन्तमें स्कूल छोड़कर मैंने रेलवे-स्टेशनपर मजूरी शुरू की। ये पाँच रुपये मेरे पसीनेके हैं....' बोलते-बोलते उसका कण्ठ रुक गया।

इस बालककी ऐसी ईमानदारी देखकर मेरे हृदयमें हर्ष हुआ। सहानुभूतिके आवेशमें मैंने उससे कह दिया—'भाई!

तुम्हारी इस विषम परिस्थितिमें मुझे रुपये वापस लौटानेकी क्या जरूरत है?'

'नहीं सर!' कहते हुए उसका स्वर दृढ़ हो गया। माँने अन्तकालमें कहा था—'बेटा! जिनसे लाया है उनको जल्दी वापस दे आना। हरामका पैसा पचता नहीं।'

'नरेन्द्र! ये रुपये ले जा, तुम्हारे काम आयेंगे'—कहकर मैंने नोट उसके सामने रख दिया।

'नहीं सर! हरामके पैसे लेनेके लिये माँने मुझको साफ मना कर दिया है। माँकी आज्ञाका मैं कभी उल्लंघन नहीं करूँगा।'

—मनहरलाल पोपटलाल सोनी

चौबीस घंटेमें पूर्ण स्वस्थ

आजसे कुछ वर्ष पूर्वकी बात है। मेरे शरीरके एक भागमें रसौली (गिल्टीके आकारमें मेद-वृद्धि) होने लगी। डॉक्टरसे इसकी जाँच करवायी तो उसने बताया कि इसकी वृद्धि स्पष्ट होने लगी है और यदि यह इसी प्रकार बढ़ती गयी तो शल्यचिकित्सा (ऑपरेशन)-के द्वारा इसे निकलवाना होगा। कुछ मास पूर्व मुझे एक भीषण आकस्मिक शोकका धक्का लगा और तभीसे यह रोग बढ़ने लगा। थोड़े ही समयमें इसने दुगुना रूप धारण कर लिया और मुझे भय होने लगा कि शल्यचिकित्साकी शरण लेनी पड़ेगी। एक दिन मेरी एक सहेलीने मुझे चिन्तित देखकर कहा—'इसके लिये भगवान्‌से प्रार्थना क्यों नहीं करती हो? ऑपरेशन करवानेकी क्या आवश्यकता है?' उसकी ऐसी उत्साहपूर्ण सलाहसे कुछ धैर्य बँधा और मैं अपनी पूजनीया अध्यापिकाके पास पहुँची। जब मैंने अपनी दुःखकथा उन्हें सुनायी तो वे बोलीं—'हम दोनों परम पिता परमात्मासे इसके लिये प्रार्थना करेंगी, क्योंकि मुझे विश्वास है कि उनमें इसे ठीक करनेकी शक्ति है और वे तुम्हें अवश्य ठीक करेंगे। अब ठीक हुआ ही समझो।'

उस समय ईश्वरीय शक्तिमें मेरा विश्वास दृढ़ नहीं था। अतः मुझे यह विश्वास नहीं हो रहा था कि किस प्रकार बिना डॉक्टरी सहायताके यह रोग ठीक हो सकता है, किन्तु मेरी अध्यापिकाजीने मुझे बार-बार आश्वासन दिया और विश्वास दिलाया कि 'प्रार्थनासे यह निश्चितरूपसे ठीक हो सकता है और ईश्वर

तुम्हारा सम्पूर्ण कष्ट शीघ्र एवं सुनिश्चितरूपसे दूर करेंगे।' उन्होंने, मुझे जो कुछ करना था उसका आदेश दिया और यह भी बताया कि परम पिता परमात्माके प्रति की गयी प्रार्थनाको किस प्रकार प्रभावोत्पादक बनाया जा सकता है। उन्होंने मुझे यह भी आश्वासन दिया कि वे मेरे लिये स्वयं भी प्रार्थना करेंगी।

अपनी अध्यापिकाजीके द्वारा बतायी पद्धतिसे मैंने प्रार्थना करना आरम्भ किया और उन्होंने भी स्वयं मेरे लिये प्रार्थना की। प्रार्थना करनेके पश्चात् उन्होंने मुझे बड़े विश्वासके साथ कहा कि 'तुम्हारी प्रार्थनाकी भगवान्के यहाँ सुनवायी हो गयी है। भगवान्की शक्ति अतर्क्य है। अध्यापिकाजीसे बात होनेके अगले २४ घंटोंमें वर्षोंसे बढ़ती हुई वह रसौली (गिल्टीके आकारमें मेद-वृद्धि) पूर्णरूपसे अदृश्य हो गयी। स्वयं मुझे विश्वास नहीं हो पाया कि क्या हुआ। अतएव अपने संतोषके लिये मैं विश्व-विद्यालयके अस्पतालमें डॉक्टरकी शरणमें पहुँची। उन्होंने ठीकसे देख-भाल करके बताया कि शरीरमें मेद-वृद्धिका कोई भी चिह्न कहीं नहीं है। शरीरका प्रत्येक भाग वैसा ही स्वच्छ और स्वस्थ है, जैसा कि नवजात बालकका होता है।'

मैंने उन्हें समूची घटना कह सुनायी और बताया कि अन्तमें मैंने प्रार्थना द्वारा उपकार करनेवाली अपनी अध्यापिकाकी शरण ली थी तथा उन्हींकी प्रार्थनाके उपरान्त यह चमत्कार हुआ है। मैं आपके पास इस भ्रमका निराकरण कराने आयी हूँ कि क्या सचमुच ही मेद-वृद्धि अदृश्य हो गयी है? डॉक्टर महोदय बड़े ही दयालु और विवेकशील पुरुष थे। उन्होंने अपने कम्पाउन्डरोंके समक्ष मेरे कंधेपर अपना हाथ रखा और बोले—'बेटी! जब

भगवान् किसी कार्यको करते हैं तो वह उत्तमोत्तमरूपमें सम्पन्न होता है और उसमें तनिक भी कोर-कसर नहीं रहती। डॉक्टरके लिये उसमें कुछ भी सुधार करनेकी गुंजाइश नहीं रह जाती।' इतना कहकर वे हँस पड़े। उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि यह मेरी आन्तरिक प्रार्थनाका प्रभाव है और जो कुछ भी थोड़ा-बहुत विश्वास मुझमें भगवान्‌के प्रति था, उसीने मुझे इस रोगसे मुक्ति दिलवायी है, इसे 'संयोग' नहीं कहा जा सकता।

इस घटनासे मेरा भगवान्‌पर विश्वास दृढ़ हो आया है और मुझे यह निश्चय हो गया है कि भगवान् प्रार्थनाका उत्तर अवश्य देते हैं।

—श्रीमती एल० बी०—(एक अमेरिकन महिला)

पश्चात्तापद्वारा एक सर्पकी अपने पूर्व-जन्मके ऋणसे मुक्ति

कुछ वर्ष पूर्व मेरे एक परिचित रेलवे-तार-विभागके इंस्पेक्टर श्रीशिवदासजी शर्मा पुष्टिकरने मुझे यह घटना सुनायी, जबकि मैं तथा वे बीकानेरसे श्रीगंगानगरके लिये रेलद्वारा एक ही डिब्बेमें यात्रा कर रहे थे।

उन्होंने कहा प्राय: तीस वर्ष पूर्वकी घटना है, जिन दिनों वे मकराणा रेलवे स्टेशन (तत्कालीन जोधपुर रेलवे)-पर तारबाबू नियुक्त थे। एक दिन संध्याकी गाड़ीसे एक सुसम्पन्न वैश्य-दम्पति उक्त स्टेशनपर उतरे, उनके साथ एक डेढ़ वर्षका बालक भी था। उन्हें दूसरे दिन प्रात:काल ऊँटकी सवारीद्वारा अपने ग्रामको जाना था, अतएव वे रात्रिविश्रामके निमित्त धर्मशालामें, जो स्टेशनके निकट ही थी, ठहर गये। स्टेशनसे गाड़ी चलनेके कुछ ही मिनट पश्चात् एक भयानक घटनाका सूत्रपात हुआ, जिसे देखकर सेठजी, उनकी पत्नी तथा अन्य उपस्थित सभी लोग डरके मारे काँपने लगे। छोटा लड़का धर्मशालाके कच्चे आँगनमें खेल रहा था। कुछ ही क्षण उपरान्त कहींसे एक काला नाग चला आया और बालकके चारों ओर कुण्डली मारकर, उसके मुँहके सामने अपना फन नीचेको झुकाकर बैठ गया, इधर बालक आँगनसे धूल उठा-उठाकर उसके फनपर डालने लगा। उन दोनोंका यह एक प्रकारका खेल बन गया, परंतु जैसे ही बालकके माता-पिता तथा अन्य मनुष्योंकी दृष्टि उस ओर गयी,

उन सबको कँपकँपी छूट गयी; किंतु साहस किसका कि इनके इस खेलमें दखल दे। सेठ-सेठानी बेचारे बुरी तरह रोने लगे। रोनेके अतिरिक्त वे कर भी क्या सकते थे। इतनेमें एक ऊँटवाला, जो जातिका राजपूत था, बालकके माता-पिताके पास आकर कहने लगा—'मेरे पास बंदूक है तथा मुझे पूर्ण आशा है कि मेरा निशाना अचूक होगा, परंतु बंदूक मैं तब चलाऊँ, जब तुम लोग मुझे यह लिखकर दे दो कि विधिवश यदि बालकको कुछ हो जाय तो मैं दोषी न ठहराया जाऊँ।' बालकके माता-पिताने स्वीकार कर लिया तथा सेठजीने ऐसा लिखकर दे दिया; क्योंकि और कोई उपाय भी नहीं था। राजपूत युवकने बंदूक छोड़ी, निशानाने सोलह आने काम किया। साँप मर गया। बालक दुर्घटनासे बच गया। सेठ-सेठानीकी प्रसन्नताका पार न रहा। उन्होंने राजपूत युवकको कुछ पारितोषिक देना चाहा, परंतु उसने कुछ नहीं लिया। दर्शकोंने उसे उसकी वीरता तथा निशानेकी सचाईके लिये बधाई दी!

परंतु महान् खेद कि प्रातःकाल, पहले ही क्षणमें सोकर उठनेवालोंने देखा कि वह ऊँटवाला राजपूत युवक सर्पदंशनद्वारा मरा पड़ा है; उसके पाँवमें साँप-काटनेका निशान विद्यमान था। लोगोंमें दौड़-धूप होने लगी। इतनेमें सौभाग्यवश एक 'सर्पविद्या-विशारद' सज्जन आ पहुँचे और कहने लगे—'भाइयो! मैं साँपकाटेका इलाज तो नहीं जानता; परंतु अपनी विद्याके प्रयोगसे किसी माध्यमद्वारा मैं सर्पकी आत्माको बुलाकर पूछ सकता हूँ कि उसने इसे क्यों काटा तथा उससे प्रार्थना भी कर सकता हूँ

कि वह सदेह प्रकट होकर इस व्यक्तिका विष चूस ले, जिससे कि यह जी उठे (क्योंकि साँपका काटा हुआ तत्काल ही मर नहीं जाता)।' उपस्थित जनोंका कौतूहल और भी बढ़ा।

एक आठ-दस वर्षके बालकको माध्यम बनाये जानेका प्रबन्ध कर दिया गया। ज्यों ही उन सर्प-विद्याविशेषज्ञ महोदयने मन्त्रोच्चारण किया त्यों ही साँपकी आत्मा माध्यमद्वारा बोल उठी—'मैं वही कलवाला साँप हूँ। गोली लगनेपर मैं हतप्राण-सा हो गया था, परंतु मेरे शरीरके दो टुकड़े नहीं हुए थे और वैसे ही मुझे पासवाली काँटोंकी बाड़पर फेंक दिया गया था। अतः रात्रि होनेपर पूरबी हवा चलते ही मेरे शरीरमें पुनः प्राण संचरित हो उठे तथा मेरा घाव भी कुछ ठीक हो गया। मध्य रात्रिके समय मैं धीरे-धीरे चलकर इस व्यक्तिके पास आया तथा इसकी निद्रितावस्थामें ही इसके पाँवमें काटकर अपना बदला चुका लिया।'

उन सर्पविद्या-विशारद महानुभावके विनय करनेपर कि 'सर्पदेवता! अब कृपया प्रकट होकर इस व्यक्तिका विष चूस लें।' उसकी आत्माने उत्तर दिया कि 'मैं इस सेठके पुत्रका तीन जन्म पहलेका ५०० रुपयेका ऋणी हूँ, जब कि यह तथा मैं दोनों मनुष्य-योनिमें थे। उस जन्ममें मैं ऋणसे मुक्त नहीं हो सका तथा मृत्युके उपरान्त मनुष्येतर योनिमें जन्म मिलनेके कारण मेरे लिये ऋणसे मुक्त होना असम्भव था ही। संयोगवश कल इस बालकको देखकर मैं पश्चात्ताप प्रकट करनेके हेतु इसके चारों ओर कुण्डली मारकर नतमस्तक होता हुआ क्षमा-याचना कर रहा था तथा यह मेरे सिरपर धूल डालकर प्रकट कर रहा था

कि 'तुझे धिक्कार है; तूने तीन जन्म ले लिये, परंतु अभीतक मेरा ऋण न उतार सका। इस प्रकार हम दोनों परस्पर अपने भाव प्रकट कर रहे थे कि इस राजपूत युवकने आकर मुझ निरपराधको मार दिया। अब यदि मेरा यह ऋण मेरे समक्ष चुका दिया जाय तो मैं प्रकट होकर इसका विष चूस सकता हूँ।' लोगोंका कौतूहल प्रतिक्षण बढ़ रहा था। तुरंत ही उपस्थित सज्जनोंमेंसे एक धनाढ्य महानुभावने पाँच सौ रुपये निकालकर उस बालककी गोदमें डाल दिये और आश्चर्य कि ऐसा करते ही वह सर्प एक ओरसे दौड़ता हुआ आया तथा उस राजपूत युवकका विष चूसने लगा। दो ही तीन मिनटमें वह युवक विषरहित होते ही चेतनामें आ गया। जब उसे ज्ञात हुआ तब उसने कृतज्ञता प्रकट करते हुए उन धनाढ्य महानुभावको खड़ा-खड़ी अपना ऊँट बेचकर तथा बाकी कुछ रुपये अपने वहाँके किसी जान-पहचानवालेसे उधार लेकर दे दिये और भगवान्‌को धन्यवाद देता हुआ अपने ग्राम (जो निकट ही था)-की ओर चल पड़ा। वह साँप भी वहाँसे चला गया। यह एक आँखों-देखी घटना है। इसकी सत्यतामें लेशमात्र भी संदेहको स्थान नहीं है।

—लक्ष्मणप्रसाद विजयवर्गीय

भगवान्का दूत

कुछ वर्ष पुरानी बात है, दिल्लीमें मैं एक मकानकी पहली मंजिलपर दो कमरोंमें कुटुम्बके साथ रहता था। एक खिड़कीके पास मैंने टेबल और कुर्सी लगा रखे थे और वहीं अध्ययन इत्यादि किया करता था। मेजके ठीक ऊपर एक रोशनदान था। इस रोशनदानमें कोई २०-२५ ईंटें डाँटकर भरी हुई थीं, जिससे धूल और पानी अंदर न आये।

एक दिनकी बात है, रातके लगभग आठ बजेका समय था। जोरकी हवा चल रही थी। जाड़ेके दिन थे और थोड़ी वर्षा भी हो रही थी। मैं कुर्सीपर बैठा कुछ पढ़ रहा था या वैसे ही अलसिया रहा था। मारे हवाके सब बंद दरवाजे भड़भड़ा रहे थे। कमरेके अंदर बैठा मैं सुरक्षाका अनुभव कर रहा था। इतनेमें मेरे दरवाजेके किवाड़ किसीने बाहरसे भड़भड़ाये। मुझे आलस्य आ रहा था। एक बार तो सोचा दरवाजा खोल दूँ। फिर विचार किया कि शायद यह शब्द हवाके तेज झोंकेके कारण आया हो, इसलिये मैं बैठा ही रहा। किंतु फिर और जोरसे दरवाजा भड़भड़ाया। अन्ततः मैं उठा और मैंने दरवाजा खोला। देखता क्या हूँ कि हमारे एक पुराने कानपुरनिवासी मित्र वर्षामें भीगे, सर्दीके मारे कुड़कुड़ाते बाहर खड़े हैं। मैंने आश्चर्यमें भरकर अपना मुँह खोलना ही चाहा था कि पीछे कुर्सीपर बड़े जोरका धमाका हुआ। देखता क्या हूँ ऊपर रोशनदानसे सारी ईंटें हवाके झोंकेके साथ कुर्सीपर गिर पड़ी

थीं। केवल एक मिनट पहले ही अगर यह घटना हुई होती तो मेरे सिरकी लुग्दी बन गयी होती। मैं अवाक् रह गया। मित्र भी देखते ही रहे। जैसे भगवान्ने ही उस आँधी, पानी और ठंडमें रातके समय केवल मुझे उस समय कुर्सीपरसे हटानेके लिये ही उन्हें भेजा हो। जब कभी भाग्य या भगवान्की बात चलती है, तब यह घटना मेरी आँखोंके सामने नाचने लगती है।

—वि० य० घोरपड़े

सहानुभूति

अमेरिका होकर आये हुए एक भाईसे वहाँके जीवनकी बहुत-सी बातें जाननेको मिलीं। बात-बातमें उन्होंने एक सुन्दर प्रसंग सुनाया, जो उन्हींके शब्दोंमें यहाँ लिख रहा हूँ—

अमेरिकाके लोगोंकी बहुत-सी बातें अच्छी लगीं। परंतु वे एक-दूसरे देश-बन्धुके प्रति जो सहानुभूति रखते हैं, वह बात तो मुझे बहुत ही पसंद आयी। एक दिन हमलोग बसकी बाट देखते जब 'क्यू' में खड़े थे, तब एक वृद्ध सज्जन भी आकर हमारे क्यूमें शामिल हो गये। बस आयी और हम सभी उसमें सवार हो गये। कंडक्टर जब टिकट देने आया तब वे वृद्ध अपनी जेब टटोलने लगे और तुरंत ही वे नीचे उतरकर ऐसे कुछ ढूँढ़ने लगे, जैसे उनका कुछ खो गया हो। उनके चेहरेपर चिन्ता छायी थी। पूछनेपर उन्होंने बताया कि 'आज वेतन मिलनेका दिन था और दस पौंडके लगभग वेतनकी रकम लेकर वे अपने परगनेकी ओर जा रहे थे, जहाँ उनका छोटा-सा कुटुम्ब रहता था। परंतु दुर्भाग्यसे वे पैसे कहीं खो गये।' पर मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और मैं समझ नहीं सका कि बसके सभी यात्री नीचे क्यों उतर गये? सभी यात्री एक लाइनमें खड़े हो गये और एक मनुष्य उनमेंसे निकलकर पैसे उगाहने लगा। मैंने यथाशक्ति कुछ दिया। लगभग दस पौंड इकट्ठे होनेपर वृद्धको दे दिये गये। उन वृद्धको मानो जीवन-दान मिल गया हो, ऐसे प्रसन्न होते हुए वे बसमें टिकट लेकर बैठ गये।

(अखण्ड आनन्द)

—इज्जतकुमार त्रिवेद

यह असाधारण साहस

श्रीहेरंजल गजानन राव हमारे आश्रमके श्रमदानी युवकोंके अग्रणी हैं। स्काउट-मास्टरकी हैसियतसे बेंगलूरमें उनका एक छोटा-सा शान्ति-पथक भी है। अभी कुछ दिन हुए, बेंगलूर नगरमें 'करगा-उत्सव' था। घनी बस्तीके भीतर रातभर मन्दिरोंकी ओरसे यह उत्सव होता है। लाखों लोगोंकी भीड़ चींटियोंके समान होती है। पुलिसका बन्दोबस्त वाकायदा रहता है। भीड़को कंट्रोल (नियन्त्रित) करना बड़ी कठिनाईका काम है। थोड़ी-सी गलती भी भयंकर परिणाम पैदा कर सकती है।

उत्सवमें एकाएक एक भीड़ नजर आयी। डी० एस० पी० पुलिस भीड़के बीच! और 'पुलिसोंको मारो-पीटो' की चारों ओरसे दर्शनेच्छु लोगोंकी आवाज। एक सिर फूटे हुए, खूनसे सराबोर एक पथिकके पकड़में एक कान्स्टेबिल! कहा गया कि पुलिसके लाठी-प्रहारसे ही यह आदमी घायल हुआ है। 'पीटो पुलिसको' एक ही नारा! एक निमिषमात्रका और विलम्ब होता तो खून-खराबा शुरू हो जाता।

श्रीगजाननजी भीड़के अंदर तीरकी तरह उस घायलके पास पहुँचनेकी कोशिश करने लगे। पुलिस-अफसरोंने रुकावट डाली 'मैं स्काउट हूँ, मैं उस घायलकी हिफाजत करूँगा। छोड़िये मुझे।' गजाननजी चिल्लाये।

एक पुलिस-अफसरने, जो उनके परिचितोंमेंसे था, जानेके लिये रास्ता कर दिया। बस, हिकमतसे उस घायलको और उसकी पकड़में रहे पुलिसको गजाननजीने तुरंत अलग कर

दिया। घाव देखा—घाव लाठीका नहीं था, वह था तेज तलवारका। गजाननजीको हिम्मत हुई। उस घायलको और घायलोंके साथकी क्रुद्ध भीड़को लेकर नजदीककी पुलिस-चौकीपर अपने शुश्रूषा-पथकके साथ वे आगे बढ़े। शुश्रूषा भी चली और घटनाका रहस्य खुला। घायलने भी स्वीकार किया। 'करगा' पालकीके जाते समय गलतीसे उसका पाँव पालकीसे टकरा गया था। क्षमा-याचनाके लिये नीचे झुकते समय, पालकी-रक्षकोंके हाथकी तलवार सिरपर टकरायी, चार इंचका गहरा घाव उसीका परिणाम था।

श्रीगजाननजीके इस शान्ति-कार्यकी मुक्त प्रशंसा करते हुए पुलिस और क्रुद्ध भीड़ फिर जुलूसमें शामिल हुई। पुलिस-अधिकारियोंने गजाननजी और उनके साथियोंका गौरव किया। उनके शान्ति और सेवा-कार्यकी सरकारी रजिस्टरमें नोट की गयी। शान्ति-सैनिककी जय!

('भूदान')

—द० मं० घुरडे

आदर्श धर्म

हमारी सात मित्रोंकी मण्डली दीपावलीकी छुट्टीमें 'गोरादरा' नामक गाँवमें सैर करनेको निकली थी। वह गाँव सूरत शहरसे लगभग दस मील दूर था। दोपहरके साढ़े बारह बजे थे। सूर्यकी प्रचण्ड किरणें हमारे मस्तिष्कको जला रही थीं। पानीके बिना हमारा गला सूख रहा था। एक मित्रने कहा—'भाई! मुझसे तो अब चला नहीं जाता। थोड़ा-सा पानी मिल जाय तो पैर चलें, नहीं तो बस बड़ी थकान हो रही है।' बात सच थी। हम सबके पैर भी लड़खड़ा रहे थे। एक तो पानीके बिना हम सब व्याकुल हो रहे थे, दूसरे रास्ता भी भूल गये थे। इसलिये हम बहुत घबरा रहे थे। रास्ता बिलकुल निर्जन-सा था। वह मित्र बार-बार पुकारता था कि 'पानी लाओ, मैं मर रहा हूँ।' इतनेमें ही वह बेहोश हो गया। हम सब घबरा उठे। न जाने अब क्या होगा, हमारे मनकी पीड़ा असह्य थी।

किन्तु इतनेमें ही दिखायी दिया कि कुछ दूरपर एक स्त्री पानीसे भरा बेड़ा लेकर जा रही है। हमने पुकारा, 'ठहरो, बहिन! हमको पानी चाहिये।' वह बहिन ठहर गयी। हमने उसके पास जाकर देखा, तो वह एक बुढ़िया माई थी! बहिन नहीं, माँ-जैसी।

'माँ, हमें पानी दो। हमारा एक मित्र तो पानीके बिना बेहोश होकर पड़ा है। देखो, माँ देखो! जल्दी पानी दो, हम तुम्हारा उपकार कभी नहीं भूलेंगे, माँ।'

'अच्छा बेटा! लो यह पानी, उसको तुरंत पिलाओ।' इतना

कहकर उस बुढ़िया माईने पानी पिलाना शुरू किया। वह मित्र पानी पीते ही होशमें आ गया। हम सबने भी पीया। वह बुढ़िया बोली— 'बेटा! सबने पानी पी लिया न? और चाहिये? हमने कहा, 'नहीं माँ सबने पी लिया।' जेबमेंसे एक रुपयेका नोट निकालकर मैं उस बुढ़ियाको देने लगा। उस बुढ़ियाने कहा, 'यह क्या करते हो, बेटा! मुझे ये पैसे लेकर क्या करना है, मैं तो प्यासे मनुष्योंकी प्यास बुझाना ही अपना धर्म समझती हूँ। यह एक रुपया कहाँतक रहेगा? यदि मैं तुम्हारा यह एक रुपया ले लूँगी तो मेरा भगवान् जिसने मुझे यह काम सौंपा है, मुझसे रूठ जायगा, इस पानीके बदलेमें मैं कुछ भी अंगीकार करूँगी तो मेरा सहज धर्म नष्ट हो जायगा। नहीं, बेटा! नहीं, यह माया मुझे नहीं चाहिये,' उस बुढ़ियाने इतना कहा और वह चलती बनी।

हम सब आश्चर्यमें पड़ गये। थी तो बिलकुल बेपढ़ी-लिखी अज्ञानी, किंतु उसका ज्ञान आदर्श था। कितना बड़ा आदर्श था। कितना बड़ा आदर्श धर्म! कहाँ भगवान्‌की श्रद्धासे प्रार्थना करती हुई वह अबोध ग्रामीण बुढ़िया और कहाँ हम अभिमानी शहरवाले जो पैसेको ही धर्म समझते हैं।

हमारे मस्तक उस बुढ़िया माईके चरणोंपर नत हो गये और हम सबने उसको वन्दन एवं नमस्कार किया।

—कंचनलाल चीमनलाल राजीवाला

राजाने मुहूर्तकी रक्षा की

संध्याका ढलता समय था। वर-राजा और बराती सरकारी बसकी बाट देखते हुए रास्तेमें खड़े थे। एकके बाद एक सरकारी बसें धूल उड़ाती चली जा रही थीं। पता नहीं, उस दिन क्यों वे सब खचाखच भरी थीं। बरातियोंके हृदय अधीर हो चले। मुहूर्त टल जानेकी आशंका होने लगी। स्त्रियोंने सोचा, कहीं यों अधर लटकते हुए ही रात न बितानी पड़े। बच्चोंके मन तो यह खेल ही था। सबसे अधिक चटपटी तो किसी बहिनके लड़ैते भाईको लग रही थी।

इतनेमें एक बस आयी, पर वह भी इतनी लदी हुई थी कि अकेले वरको भी उसमें बैठाकर भेजना सम्भव नहीं था! बस अपनी गर्वीली चालसे चल दी। परिस्थितिकी गम्भीरता बड़े-बूढ़ोंके चेहरोंपर चमक उठी। कैसे यह समस्या हल हो, सभीके मनमें यह विकट प्रश्न उत्पन्न हो गया। हो-हल्लेमें दिवावसान हो गया और दूर क्षितिजपर.........।

मोटरके दो दीपकोंकी रोशनी आकाशमें चमकी। ज्यों-ज्यों वह ज्योतिका प्रवाह निकट आता गया, त्यों-ही-त्यों सबके मनोंमें आशाका संचार-सा होने लगा। मनमें शंका-कुशंकाएँ उत्पन्न होने लगीं, पर आशास्रोतमें स्नान करना तो सभीको अच्छा लगता है न?.....।

मोटर पास आयी, तब तो रही-सही आशा भी टूटकर चूर हो गयी, क्योंकि वह 'भव्यांगना' तो वहाँके राजा साहेबकी थी और स्वयं राजा साहेब महारानीके साथ राजधानीकी ओर वापस जा रहे

थे। राजाका ओजस् विलक्षण था और वहाँकी प्रजा राजापर मरी जाती थी। सबने मोटरके पास आकर भाव-लहरियोंसे निहारकर अभिवादन किया। महाराजाने मोटर रोक दी।

राजाके पूछनेपर स्थिति बतला दी गयी। राजाके श्रेष्ठ हृदयने परिस्थितिका अनुभव किया। उन्होंने तुरंत लाड़ले वर-राजाको, वर-भगिनीको और वरके माता-पिताको अपनी 'लिमोज विंडसर' कारमें बैठा लिया और शेष बारातियोंको पीछेसे आनेवाली 'मोटर वैगन' में चढ़कर आनेके लिये कहा।

पंद्रह मीलका रास्ता तै करके महाराजाने बारातको उसके नियत स्थानपर उतार दिया। ये राजा थे पोरबंदरके महाराणा श्री.......।

(अखण्ड आनन्द)

—महेश भाई वैष्णव

सहज धर्म

सन् १९५२ की बात है। श्रीसत्यस्वरूप महात्मा शाहंशाहजी अमरकण्टकसे शहडोल जा रहे थे। गाड़ीमें बहुत अधिक भीड़ थी, परंतु महात्माजीको शहडोल जाना अत्यावश्यक था। वे उसी भीड़में बड़ी सावधानीसे घुस गये और चुपचाप एक स्थानपर जाकर खड़े हो गये। वहींपर एक अप-टू-डेट सज्जन बैठे हुए थे। उन्होंने महात्माजीको देखकर बिगड़कर कहा—'यह ढोंगी साधू खा-खाकर मोटा-ताजा बना हुआ है। हरामकी वस्तु मिलती है और बिना टिकट जहाँ चाहे वहाँ चल पड़ते हैं। इन्हीं ढोंगियोंने तो भारतको बर्बाद कर दिया है।.....चल हट सिरपरसे.....' इस प्रकार वे महात्माजीको बुरी-भली सुनाने लगे। महात्माजीने कोई प्रतिवाद नहीं किया, वे खड़े-खड़े मुसकराने लगे।

उसी समय टिकट-परीक्षक इसी डिब्बेमें टिकट-निरीक्षण करनेके लिये आ गया। अप-टू-डेट सज्जन उस टिकट-निरीक्षकको देखकर घबरा गये। इधर-उधर देखने लगे। तबतक उन्हीं सज्जन महोदयसे टिकट-परीक्षकने कहा—'टिकट!' वे तो मुँह बनाने-बिगाड़ने लगे। इतनेमें ही महात्माजीने कहा—'बाबू! इनका टिकट मेरे पास है, यह लीजिये।' यह सुनकर जब उस टिकटबाबूने ऊपर महात्माजीकी ओर देखा तो उन्हें पहचानकर सभी कुछ छोड़ 'स्वामीजी, स्वामीजी' कहता हुआ उनके चरणोंपर पड़ गया और उन्हें उठाकर प्रथम श्रेणीमें ले जाने लगा। वे अप-टू-डेट सज्जन महोदय उठकर रोते हुए स्वामीजीसे कहने

लगे—'मुझे क्षमा कर दें।' स्वामीजीने हँसते हुए कहा—'भैया! इसमें क्षमा-प्रार्थनाकी तो कोई आवश्यकता नहीं। तुमने अपराध ही क्या किया है? वह तो तुम्हारी सहज प्रवृत्ति थी और मैंने भी क्या किया, जिसपर तुम मेरे कृतज्ञ होते हो? भैया! मेरी प्रसन्नताका पार नहीं है; क्योंकि मुझ तुच्छकी सेवाको तुमने स्वीकार कर लिया। मैंने कोई नया कार्य थोड़े ही किया है? यह तो मेरा सहज धर्म है, जिसका मैंने पालन किया है।' वे सज्जन तो पानी-पानी हो गये।

महात्माजीके इस वाक्यको सुनकर मेरा हृदय हर्षोत्फुल्ल हो उठा। आज भी जब मैं महात्माजीका सहज धार्मिक स्वभाव सोचता हूँ तो मुझे बड़ी प्रेरणा मिलती है।

—मानसकेसरी कुमुदजी रामायणी

पुनर्जन्मका ज्वलन्त प्रमाण

पूर्वजन्मका वृत्तान्त बतानेवाले अनेक बालक-बालिकाओंके संवाद समाचार-पत्रोंमें निकलते रहते हैं, किंतु मध्यप्रदेशके छतरपुर नगरमें श्रीमनोहरलाल मिश्र, एम० ए० की सुपुत्री कुमारी स्वर्णलताने पूर्वजन्म-स्मृतिका अत्यन्त विलक्षण उदाहरण प्रस्तुत किया है।

इस बालिकाको दो पूर्वजन्मोंकी स्मृति है। एक जन्ममें यह कटनीमें श्रीहरिप्रसाद पाठककी बड़ी बहिन 'बूँदा बाई' थी और दूसरे जन्ममें सिलहटके* रमेश बाबूकी पुत्री 'कमलेश'।

वर्तमान जन्ममें तीन-चार वर्षकी अवस्थामें अपने ननिहाल जबलपुरसे माता-पिताके साथ पन्ना आते समय कटनीके रेलवे-पुलके समीप उसे एकाएक अपने पूर्वजन्मकी स्मृति हो आयी। उसने कहा कि 'कटनीमें हमारे बाबूका घर है, उनके यहाँ अच्छी चाय पीनेको मिलेगी; किंतु उसके इस कथनपर कोई ध्यान नहीं दिया गया। पन्ना पहुँचकर बालिकाने अपने कटनीवाले घर इत्यादिका पूरा विवरण दिया और अनेक बातें बतलायीं; किंतु मिश्रजी उसकी बातोंको मनोविकृतिजन्य प्रलाप मानकर उसका उपचार कराते रहे।

पाँच वर्षकी अवस्थामें एक दिन उसने अकस्मात् ही एक अन्य पूर्वजन्ममें अभ्यस्त बँगलाभाषासे मिलती-जुलती बोलीके दो गीत नृत्य करते हुए सुनाकर अपनी माताको और भी घबरा दिया। गीतोंकी भाषा न समझ पानेके कारण मिश्रजीने

---

* सिलहट आसाममें है—असमिया भाषा बँगलासे मिलती-जुलती है।

डॉ० डी० एन० मुखर्जी नौगाँवको स्वर्णलतासे वे गीत सुनवाये। उन्होंने जाँच करके यही निर्णय दिया कि कन्यामें कोई मानसिक विकृति नहीं है, इसे अपने पूर्वजन्मके बँगलासे मिलती-जुलती भाषाके गीत याद हो आये हैं।

यह ज्ञात हो जानेपर भी कि स्वर्णलताको पूर्वजन्मोंकी स्मृति है, झमेलेसे बचनेके लिये मिश्रजी इस ओरसे उदासीन ही रहे, किंतु प्रो० राजीवलोचन अग्निहोत्रीकी पत्नीद्वारा स्वर्णलता-कथित पूर्वजन्म-परिवारविवरणादिकी पुष्टि होने तथा गतवर्ष तुलसी-जयन्ती-उत्सवपर छतरपुर आये हुए सागर-विश्वविद्यालयके उपकुलपति श्रीद्वारिकाप्रसाद मिश्रके इस बालिकाके वृत्तान्तमें श्रीलोकनाथ पटेरियाकी प्रेरणाके कारण अभिरुचि लेनेसे, पूर्वजन्मविषयक शोधकार्य करनेवाले अनेक महानुभाव—जैसे श्रीएच० पी० पस्तोर 'सोहम्', श्रीहेमेन्द्र बनर्जी, संचालक सेठ सोहनलाल इन्स्टिट्यूट पारासाइकोलाजी, गंगानगर, राजस्थान इत्यादि इस ओर आकृष्ट हुए। श्रीबनर्जीने कुमारी स्वर्णलताकी वार्ता एवं गीतोंका टेप-रिकार्डिंग किया और कटनीके सम्बद्ध परिवारको सूचना दी।

फलतः कुमारी स्वर्णलताके पूर्वजन्मके छोटे भाई श्रीहरिप्रसाद पाठक (जो अब ६२ वर्षके हैं) छतरपुर आये। स्वर्णलताने उन्हें न केवल पहचान किया, प्रत्युत उनके प्रश्नोंके तथ्यसम्मत उत्तर देकर उन्हें सचमुच पूर्वजन्मकी बहन होनेका विश्वास भी करा दिया।

पाठकजीने अपने बहनोई ('बूँदाबाई' के पति) मैहरनिवासी श्रीचिन्तामणि पाण्डेयसे जब यह सब हाल कहा तब वे भी अपने पुत्र मुरलीको लेकर मिश्रजीके पास छतरपुर आये और अनेक

कूट प्रश्नोंद्वारा जाँच करके उसी निष्कर्षपर पहुँचे, जिसपर पाठकजी पहले पहुँच चुके थे। अन्ततः दिनांक १२-७-५९ को पाठकजीकी मोटरमें मिश्रजीको सपरिवार मैहर, कटनी और जबलपुर जाना पड़ा और इन सभी स्थानोंपर जिन-जिन महानुभावोंने जो-जो प्रश्न पूछे उनके सही उत्तर देकर तथा पूर्वजन्ममें सम्पर्कमें आनेवाले अनेक व्यक्तियोंको पहचानकर कुमारी स्वर्णलताने सबको आश्चर्यमें डाल दिया। कटनी और जबलपुरके स्थानीय पत्रोंके अतिरिक्त दिनांक २१-७-५९ के 'नवभारत टाइम्स' में भी स्वर्णलतासम्बन्धी संवाद छप चुका है।

अभी एक पूर्वजन्मकी स्मृतिकी ही जाँच हुई है। विस्तारभयसे पूरा विवरण यहाँ नहीं दिया जा सका। किंतु जो लोग भारतीय धर्म एवं दर्शनमें श्रद्धा नहीं रखते, उनके लिये स्वर्णलता एक जीती-जागती चुनौती है और परीक्षासे सही प्रमाणित होनेवाली उसकी पूर्व जन्म-स्मृति पुनर्जन्मका ज्वलन्त प्रमाण है।

—गोकुलप्रसाद त्रिपाठी, एम० ए०, एल० टी०, साहित्यरत्न

बहिनसे घड़ा नहीं उठता था, तब ?

उस दिन बम्बई राज्यके वित्तमन्त्री डॉ० जीवराज मेहता बड़ौदा गये थे। स्वागत-समारोहके अफसरोंसे घिरे डॉ० मेहता जब चले जा रहे थे, तब रेलके प्लेटफार्मपर बने पुलपर एक नारी गोदीमें लिये बच्चेको एक बाँहसे सँभालती, दूसरे हाथसे बड़ा घड़ा सँभाले उस पुलपर जा रही थी। उक्त बहिन घड़ेके उठानेमें तकलीफका अनुभव कर रही थी। वह बड़ी कठिनाईसे चल रही थी। डॉ० मेहता दौड़े और उस बहिनका घड़ा अपने हाथमें उठा लिया। बहिन केवल बच्चेको सँभालते हुए पुलसे उतर गयी। तब डॉ० मेहताने घड़ा उक्त बहिनको सँभला दिया। × × × लोग भूले न होंगे कि डॉ० जीवराज मेहता राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीके निजी उपचारक भी थे।

जी, उस घड़ेको, उस बहिनके घड़ेको उठाते या सौंपते हुए फोटो खिंचवानेकी अधमताका नाम न मन्त्रित्व है, न देशभक्ति। डॉ० मेहताका उदाहरण किसी भी राजनीतिक या अराजनीतिक संस्थाको जीवन-दान दे सकता है। वह सहानुभूति थी—विशुद्ध, निःस्वार्थ, निरुद्देश्य।

(कर्मवीर)

इनाम देना ही पड़ा

पुरानी बात है। मैं उन दिनों महकमें जंगलातमें कंजरवेटर ऑफ फॉरेस्ट्सका कैंप क्लर्क था। अल्मोड़ेके बाद रामगढ़में कैंप पड़ा था। सबेरे साहब, मेमसाहिबा, खलासी, चपरासी और लगभग सत्तर-अस्सी कुली भुवालीको चले गये। उनमें एक कुली वह भी था, जो खजानेका बक्स ले गया था। बक्स देनेसे पहले उसमेंसे अठारह रुपये और कुछ आने-पाई दूकानदारका हिसाब चुकता करनेके लिये निकालकर मैंने कोटकी जेबमें डाल दिये थे। मेरे खानेके लिये मेरा निजी नौकर पराँठे बनाकर कटोरदानमें बंद कर चला गया। मेरे साथ यथापूर्व एक चपरासी और सवारीके लिये एक घोड़ा रह गया था।

खाना खाकर मैंने अपने कोटसे रुपये निकाले और दूकानदारको देकर मैं घोड़ेपर सवार होकर चपरासीके साथ चल दिया। लगभग एक फर्लांग चले होंगे कि दूकानदारने आवाज दी—'अरे बाबूसाहब, अरे बाबूसाहब! आप तो वैसे ही चल दिये, कुछ इनाम तो देते जाते!' मैं रुका और जब वह मेरे पास आ गया तब मैंने कहा—'भाई! मेरे पास कौन-सी मद है, जिससे मैं तुम्हें इनाम दूँ? रिश्वत तो मैं लेता नहीं हूँ!'

दूकानदारने एक नोट मेरे हाथपर रखा और कहा—यदि इनामका काम किया हो तब तो इनाम दीजियेगा न? हाथपर पचास*

---

* उन दिनों ५० रुपयेका नोट चलता था और ५० रुपये तथा १० रुपयेके नोटमें इतना ही अन्तर था कि पचासके नोटपर Fifty लाल स्याहीसे लिखा रहता था।

रुपयेका नोट रखते हुए, जिसको मैंने दस रुपयेका नोट समझकर बिना देखे उसको दे दिया था। नोट लेकर मैंने उससे कहा कि 'भाई! तुम ही चालीस रुपये लौटा देते, यहाँसे तो खजानेका बक्स सुबह ही भुवाली चला गया है।' इसपर उसने कहा कि 'अमुक कुलीके हाथ भुवाली जाकर भेज देना।' यह कहकर वह अपनी दूकानपर लौट गया। मैंने भुवाली जाकर दूकानदारके १० और २ रुपये इनामके भेज दिये। आज कितने दूकानदार इतने ईमानदार मिलेंगे।

—गंगाशरण शर्मा, एम० ए०

कर्तव्य-पालन

निस्संदेह, कर्तव्य-पालनका पथ कठिनाइयोंसे तो भरा है ही; किसी-किसी प्रसंगमें तो आर्थिक दृष्टिसे भी भारी नुकसान उठाना पड़ता है; परंतु अपना उत्तरदायित्व पूर्ण करनेके बाद मनको जो शान्ति मिलती है, उसकी कल्पना तो केवल जिन्होंने कर्तव्य-पालनका ईमानदारीसे प्रयत्न किया होगा, उन्हींको हो सकती है। यहाँ कर्तव्य-पालनके सम्बन्धमें अत्यन्त सावधान लन्दनके एक केमिस्टकी बात करनेका लोभ नहीं रोका जा सकता।

एक दिन उस केमिस्टकी दूकानपर पेन नामक एक आदमी डॉक्टरसे नुस्खा लिखवाकर लाये। उसमें एक जहरी दवाका सौवाँ भाग मिलानेके लिये लिखा था। दूकानके कम्पाउन्डरने भूलसे उस दवाका दसवाँ भाग मिला दिया। श्रीपेन दवा लेकर चले गये।

थोड़ी देर बाद कम्पाउन्डरको अपनी भूलका ध्यान आया कि उसकी कैसी भयानक भूल हो गयी है। उस दवाकी एक खुराक लेनेके साथ ही रोगी स्वर्गका प्रवासी बन जायगा। उसने तुरंत केमिस्टको इसकी सूचना दी और केमिस्टने पुलिसको इत्तिला दी। पुलिस अधिकारीने कहा—'आप तुरंत फोन अथवा तारके द्वारा श्रीपेनको सूचित कर दीजिये कि वे दवा न लें।' परंतु केमिस्टके रजिस्टरमें श्रीपेनका पता नहीं लिखा गया था और नुस्खा लिखकर देनेवाले डॉक्टरको भी श्रीपेनका पता मालूम

नहीं था। टेलीफोन डाइरेक्टरी देखनेपर दर्जनों श्रीपेन मिले। पुलिसकी सम्मतिके अनुसार प्रत्येक 'श्रीपेन' को एक-एक तार दिया गया—'श्रीपेन! उन गोलियोंको आप खानेके उपयोगमें न लीजियेगा।' इसके बाद संध्याको प्रकाशित होनेवाले तमाम समाचारपत्रोंमें पहले पृष्ठपर मोटे-मोटे टाइपोंमें विज्ञप्ति छपायी गयी—'श्रीपेन! उन गोलियोंको आप खानेके उपयोगमें न लीजियेगा।' उसी दिन सिनेमागृहों और थियेटरोंमें भी स्लाइडोंके द्वारा यह प्रचार किया गया—'श्रीपेन! उन गोलियोंको खानेके उपयोगमें न लाइयेगा।' सारा लन्दन हैरान-परेशान हो गया और यह जाननेके लिये आतुर हो गया कि ये 'श्रीपेन' कौन हैं और ऐसी क्या गोलियाँ हैं, जिनको खानेके उपयोगमें न लेनेके लिये इतना कहा जा रहा है?

दूसरे दिन असली 'श्रीपेन' महाशयका पत्र उस केमिस्टको मिला। उसमें उन्होंने अत्यन्त कृतज्ञता प्रकट करनेके साथ ही लिखा था—'मैंने उन गोलियोंको खानेके उपयोगमें न लेनेकी विज्ञप्ति पढ़ी और उसके अनुसार मैंने गोलियोंका उपयोग नहीं किया है।' इस पत्रके मिलनेके बाद ही उस केमिस्टका जी ठिकाने आया।

दूसरी ओर, जब लन्दन शहरके लोगोंको पूरा विवरण जाननेको मिला, तब उनके मनमें उस केमिस्टके प्रति बहुत ही आदरकी भावना उत्पन्न हुई। परिणाम यह हुआ कि उस केमिस्टका व्यापार कई गुना बढ़ गया।

—'प्रताप'

श्रीहनुमान्जीकी कृपासे रक्षा

कुछ वर्ष पहलेकी बात है, मैं अपने कर्मचारी श्रीकमालुद्दीन सरकारके साथ रिक्शेपर सवार होकर स्टेशनकी ओर जा रहा था; रातके लगभग साढ़े दस बजे थे। मेरी कमरमें छः हजार रुपये थे और सरकारके पास तीन हजार। कुल नौ हजार रुपये साथ थे। हमलोग कपड़ा खरीदने ढाका जा रहे थे। जब बीच बाजारमें श्रीअगरचन्द्रजी नाहटाकी गद्दीके पास तीन आदमी साइकिलपर सवार हमारे पीछे हो गये, तब मुझे डर लगा और मैंने श्रीहनुमान्जी महाराजके नामकी धुन लगा दी। सोचा कि अभी सामने फणिबाबूकी दूकान आयेगी, वहाँ ठहर जायँगे। पर भूलसे हमलोग फणिबाबूकी दूकान छोड़कर आगे निकल गये। हमें पता नहीं लगा। वे तीनों डाकू हमारे पीछे लगे थे और टार्चसे बहुत तेज रोशनी हमारे रिक्शेपर फेंक रहे थे। मैं सब ओर श्रीहनुमान्जी—बाबा बजरंगबलीको देखने लगा और उनका नाम पुकारने लगा। मनमें सोच रहा था कि श्रीहनुमान्जीने हरेक संकटसे हमारी रक्षा की है तो इस संकटसे भी वे अवश्य बचायेंगे। इतनेमें घना जंगल आ गया। उनमेंसे एकने बड़े जोरसे अस्पष्ट आवाज दी। मेरे तो प्राण ही मानो निकले जा रहे थे। मैंने बड़े जोरसे बजरंगबलीका नाम पुकारना शुरू कर दिया। इसी बीचमें मुझे डाकुओंकी टार्चकी रोशनीमें अचानक रास्तेके बगलमें आठ-दस बैलगाड़ियाँ दिखायी दीं। अब मुझे साहस हुआ और बचनेका भरोसा हो गया। डाकुओंने भी गाड़ियोंको देखा और शिकार हाथसे निकल गया समझकर वे वहींसे लौट गये।

मैंने रिक्शेवालेसे कहा—'गाड़ियोंके साथ-साथ चलो।' वह चलने लगा। थोड़ी ही देरमें इयासिन सलाहीकी गद्दी तथा दूकान दिखायी दी और स्टेशन भी सामने दीखने लगा। रिक्शा रुका। आश्चर्यकी बात तो यह हुई कि जो आठ-दस बैलगाड़ियाँ थीं और प्रत्येक गाड़ीपर एक-एक गाड़ीवान थे; वे हमें दिखायी नहीं दिये, न तो वे गाड़ियाँ स्टेशनकी ओर गयीं, न वहाँसे एक रास्ता डोमारकी ओर जाता था, उस रास्तेपर गयीं और न वापस ही लौटीं। क्या हुआ, कुछ समझमें नहीं आया। हमने तो समझा, यह सब बाबा हनुमान्‌जीकी कृपा थी। हमलोग स्टेशन सकुशल पहुँच गये। रिक्शेवालेके हाथ दूकानपर मेरे छोटे भाई रामलालके नाम मैंने एक चिट्ठी लिखकर भेज दी, जिसमें बाबाकी कृपासे बचनेकी बात लिखी थी।

इधर हमलोगोंके दूकानसे चलनेके बाद हमारे एक मित्रने मेरे भाईके पास जाकर पूछा कि 'आज तुम्हारे यहाँसे कोई बाहर तो नहीं गया है न? यदि गया है तो बड़ा खतरा है? क्योंकि हमें अभी पता चला है कि तीन बदमाश एक रिक्शेके पीछे गये हैं और रिक्शेपर हमला होनेवाला है।'

मेरे भाईने उनको सब हाल बताया और चिन्तातुर होकर दूकान खोले वह रास्तेकी ओर ताकता बैठा रहा। उसने सोचा, दुर्घटना तो हुई ही होगी, शायद भाईको अस्पताल ले जाना पड़े; इतनेमें मेरी चिट्‌ठी लेकर रिक्शेवाला उसके पास पहुँचा। चिट्‌ठी पढ़नेपर उसे शान्ति मिली और उसने रिक्शेवालेको मिठाई खिलायी। तबसे वह भी बजरंगबली बाबा हनुमान्‌जीका नाम जपने लगा।

—रामकृष्ण विहानी, निलफामारी

सच्चा न्यायाधीश

एक न्यायाधीश थे। वे सबका सच्चा न्याय करते। कहते कि न्यायका काम भगवान्‌का काम है, इसमें जरा भी पक्षपात नहीं किया जा सकता, जरा भी लापरवाही नहीं की जा सकती। दोनों पक्षोंकी बातोंको अच्छी तरह सुनना, फिर न्यायको तौलना। न्यायकी डंडी समतौल रहनी चाहिये। जरा भी ऊँची-नीची न होनी चाहिये।'

एक बार इनके पास एक मुकद्दमा आया। दो पैसेवालोंमें झगड़ा था। जीतनेवालेको लाखोंकी मिल्कियत मिलनेवाली थी।

इनमें एकके मनमें आया कि न्यायाधीशको राजी कर लूँ तो फैसला मेरे पक्षमें हो जाय। लाख रुपये लेकर एक रात्रिको वह न्यायाधीशके घर पहुँचा।

उसने जाकर कहा—'आपके लिये यह भेंट लाया हूँ साहेब! लाख रुपये हैं। आपकी अदालतमें वह मुकद्दमा चल रहा है न! उसका फैसला जरा मेरे पक्षमें कर दीजियेगा। बस!'

यह सुनते ही न्यायाधीशने कहा—'न्यायको गंदा करने आये हैं आप? क्यों? ले जाइये ये रुपये। न्याय जैसे होता होगा, वैसे ही होगा।'

पैसे देनेवालेको अपने पैसेका अभिमान था। फिर हाथमें आये हुए लाख रुपये कोई छोड़ दे, यह उसकी समझमें ही नहीं आ रहा था। इससे उसने कहा—'साहेब! कोई सौ-दो-सौ रुपये नहीं हैं, लाख रुपये हैं। ऐसा लाख रुपये देनेवाला दूसरा कोई नहीं मिलेगा!'

न्यायाधीशने तुरंत जवाब दे दिया—'लाख रुपये देनेवाले तो आप-जैसे बहुतेरे मिल जायँगे, पर मेरे-जैसा 'ना' करनेवाला कोई नहीं मिलेगा। जाओ। उठा ले जाओ इस मैलको यहाँसे!'

यह सुनकर वह भयभीत हो गया। एक भी अक्षर बिना बोले रुपये लेकर चुपचाप अपने रास्ते चला गया।

इन न्यायाधीशका नाम है—अंबालाल साकरलाल देसाई। ये गुजरातप्रान्तीय एक महान् भारतीय थे।

('पुस्तकालय')

पक्षीपर दया

एक फ्रेंच लड़का रोलफोनस् जंगली जानवरोंसे, खास करके पक्षियोंसे बहुत प्रेम करता है। उसका सबसे अधिक प्यार है आकाशमें गाती हुई उड़नेवाली लवा (Skylark) नामक चिड़ियासे। एक दिन वह रास्तेसे जा रहा था, उसको लार्कका संगीत सुनायी पड़ा। उसने आस-पास देखा तो उसे दिखायी दिया कि एक चिड़िया बेचनेवालेके पिंजरेसे वह ध्वनि आ रही है। उसे लगा—इस गानमें दुःख भरा है। वह चिड़िया बेचनेवालेके पास गया तो उसे पता लगा कि वहाँके लोग इस चिड़ियाका मांस खाना बहुत पसंद करते हैं और वह इसीलिये बेचने लाया है। लड़केने उसके दाम पूछे, पर उतने पैसे उसके पास नहीं थे। लड़केने उससे कहा, 'भाई! तुम ठहरो, मैं अभी घरसे पैसे लेकर आता हूँ।' उससे यों कहकर लड़का दौड़ा हुआ घर गया। दुपहरीकी बड़ी तेज धूप पड़ रही थी। घर जानेपर पता लगा कि माँ बाहर गयी है और वह भोजनके समयसे पहले नहीं लौटेगी। रोलफोनस्को बड़ा दुःख हुआ। उसने सोचा तबतक तो वह लार्क बिक जायगी और काट भी दी जायगी। उसे दयालु धर्मगुरु जैक्कस (Father Zaeques)-की याद आयी और वह तुरंत दौड़ा हुआ श्रीजैक्कसके पास पहुँचा। बड़ी तेज धूप थी और उसके सिरमें दर्द हो रहा था, पर उसने कुछ भी परवा नहीं की। रोलफोनस्ने सारा हाल सुनाकर पादरी महोदयसे बड़े करुणस्वरमें

कहा कि 'शीघ्र पैसे नहीं मिलेंगे तो लार्कके प्राण बचने सम्भव नहीं हैं।' दयालु पादरी जैक्कस महोदयने रुपये देते हुए लड़केसे कहा—'तुम इस कड़ी धूपमें दौड़-धूप करके बीमार हो गये हो, मैं तुम्हें इसी शर्तपर रुपये देता हूँ कि तुम तुरंत चिड़िया खरीदकर ले जाओ और सीधे घर जाकर आरामसे पलंगपर लेट जाओ।'

लड़केने शर्त स्वीकार कर ली और रुपये लेकर तुरंत वह पहुँचा। जाकर देखा तो एक मेमसाहब लार्कको खरीदनेके लिये मोल-तोल कर रही थी और उसके मुँहपर पानी आ रहा था। रोलफोनस्ने तुरंत रुपये हाथमें देकर पिंजरा ले लिया। लार्कको मानो प्राणरक्षक प्रेमी बन्धु मिल गया। वह पिंजरा लिये घर पहुँचा और घरमें घुसते-घुसते गरमीके कारण बेहोश होकर बाहर बगीचेके दरवाजेपर गिर पड़ा।

पादरी महोदयको लड़केकी बड़ी चिन्ता थी। वे देखने आये तो देखा बेहोश लड़केके बिछौनेके पास बैठी उसकी माँ भयभीत हुई रो रही है। पादरीने उसको धीरज दी और कहा—'तुम घबराओ नहीं, जो दूसरेको बचाता है, उसे भगवान् बचाते हैं।' लड़केने एक बार आँखें खोलीं, पर वह फिर बेहोश हो गया। होश आनेपर उसने देखा 'लार्क पक्षीका पिंजरा टेबलपर रखा है और वह ऐसा मीठा स्नेहभरा करुण गीत गा रहा है, मानो बेहोश लड़केको बचानेके लिये ईश्वरसे प्रार्थना कर रहा हो।'

कुछ देरमें लड़का स्वस्थ हो गया और उसने उठकर पिंजरेको बड़ी खिड़कीके पास ले जाकर खोल दिया। पक्षी गाता हुआ मुक्त आकाशमें उड़ चला! वह अपनी प्रेमभरी चितवनसे अपने प्राणरक्षक उस लड़केकी ओर कृतज्ञताभरे हृदयसे देखता गया।*

—निवासदास पोद्दार

---

* यह घटना—Animals Defender and Anti-vivisection news, 27 Palace Street; London में श्रीकारलोट्टाकार महोदयने लिखी है। इस घटनाको पढ़कर हमारी दशापर बड़ा दुःख होता है। भारतमें आज प्रतिदिन सहस्रों गायोंका निर्दय वध होता है। करोड़ोंकी लागतके कसाईखाने खोले जाते हैं, जहाँ जीवित गौ-बछड़ोंकी खालें उतारी जाती हैं। बंदरोंको मारनेके लिये विदेश चलान किया जाता है। कहाँतक कहा जाय, सबमें एक आत्माको देखनेवाले धर्मप्राण भारतकी यह दुर्दशा! कितना घोर अधःपतन है!!

गरीबीकी दुआ

गरीबोंको चूसकर इकट्ठा किया हुआ पैसा नहीं टिकता और इस तरह मालदार बना हुआ मनुष्य पैसेका सुख भी नहीं भोग सकता। कुदरतके इस न्यायपर बात चल रही थी। सभी अपनी-अपनी जानकारीके उदाहरण देकर इसका समर्थन कर रहे थे।

जिनके घर हमारी यह मण्डली इकट्ठी हुई थी, वे मूलमें ब्याजका व्यापार करते थे और अच्छे पैसे कमानेके बाद दूसरे व्यापारमें भी सफलता पा चुके थे।

'तो भाई आपके सम्बन्धमें क्या समझें?' मैंने यह सीधा प्रश्न किया। सब लोग शान्तिके साथ उत्तरकी प्रतीक्षा करने लगे।

हमारे बाप-दादाका व्यापार था ब्याजपर रकम उधार देना। पिताजीके मरनेके बाद मेरे बड़े भाईने इस व्यापारको सँभाल लिया। हमारा संयुक्त कुटुम्ब था।

एक दिन मैं बाहरसे घर लौटा तो मैंने देखा कि एक गरीब-सा आदमी बड़े भाई साहेबसे प्रार्थना करता हुआ पुराना हिसाब चुकता करनेके लिये कह रहा है। खातेमें बाकी निकलते हुए पूरे रुपये लिये बिना बड़े भाई हिसाब चुकता करनेके लिये तैयार नहीं थे। इस आदमीने मूलमें पाँच सौ रुपये ब्याजपर उधार लिये थे। ब्याजसमेत कुल लगभग एक हजार रुपये भर देनेपर भी अभी सात सौ रुपये उसके नाम बाकी पड़ रहे थे। मुझे यह आदमी सच्ची नीयतका और बिलकुल गरीब स्थितिका लगा। वह दो सौ रुपये लाया था और इसीमें खाता चुकता करनेके लिये गिड़गिड़ा रहा था। बड़े भाई साहेब एक

पाई भी कम लेनेको तैयार नहीं थे। उनके सामने मेरा कुछ बोलना उचित नहीं लगता था। पर इस परिस्थितिने मेरे मनमें बड़ी हलचल मचा दी थी।

भोजनका समय होनेपर बड़े भाई उठे और उसको यह कहते गये कि 'पूरे पैसे देने पड़ेंगे, नहीं तो रुपये वसूल करनेके लिये दावा किया जायगा।'

वह गरीब ग्रामीण जमीनकी ओर देखता बैठा रहा। मैं भी उसके सामने जडवत् बैठा था। कुछ देर बाद मैंने उस आदमीको आँखोंसे आँसू पोंछते देखा। सचमुच वह रो रहा था। मेरे दिलपर मानो हथौड़ेकी चोट लग रही हो, ऐसा लगा। एक ओर बड़े भाई साहेबका डर था, दूसरी ओर इस गरीबके प्रति अनुकम्पा थी। क्या किया जाय? समय कम था। मैंने निर्णय कर लिया। पासकी आलमारीसे मैंने बही निकालकर उसका खाता देखा तो पता लगा कि असली रकमके अतिरिक्त बहुत अच्छी रकम ब्याजपेट जमा थी। उसके लाये हुए दो सौ रुपयेमें केवल सौ ही रुपये लेकर मैंने उसके देखते-देखते खाता चुकता करके उसे फाड़खती दे दी और जानेके लिये कह दिया। उस दिन बड़े भाई महोदयका क्रोध मुझपर खूब ही उतरा, तथापि मुझे एक शुभ कार्य करनेका संतोष था। उसके बाद आजतक मैंने अपनी कमाईके सिवा कभी किसी भी गरीबका दिल दुखाया हो, यह मुझे याद नहीं है और आप देख रहे हैं कि मेरे जीवनमें आज संतोष है।

(अखण्ड आनन्द)

—के० एच० व्यास

आजके चरमोत्कर्षपूर्ण चिकित्सा-विज्ञानको मन्त्रकी अनुपम चुनौती

घटना कुछ वर्ष पहलेकी है। एक सुप्रतिष्ठित बघेल परिवारकी बात है। श्री वाय० पी० बघेल, एग्रीकल्चर असिस्टेंट (कृषि-सहायक) रायपुरसे मेरी गत तीन-चार वर्षोंसे घनिष्ठता है। उनका स्वभाव बहुत ही मधुर और आनन्ददायक है।

एक दिन मैंने देखा कि उनका साला श्रीरणवीर रुग्णावस्थामें पड़ा है। पूछनेपर ज्ञात हुआ कि वह एक असाध्य हृदयरोगसे ग्रस्त है बचपनसे ही। सैकड़ों रुपयेका खर्च प्रतिवर्ष किया जाता है व्याधिनिवारणार्थ। स्तम्भित-सा हुआ मैं सुनकर। आजके इस विज्ञान-युगमें भी क्या इस प्रकारके हृदयरोगसे मुक्ति सुलभ नहीं। सहसा मेरा ध्यान आयुर्वेदिक ओषधियोंकी ओर आकर्षित हुआ और मैं रायपुरके अतीव योग्य संस्कारी वैद्यके पास पहुँचा। उन्होंने आश्वासन दिया कि व्याधि दूर की जा सकती है। सम्भवतः मैंने भी श्रीबघेलको तदनुसार सुझाव दिया। वह परिवार मुझे बहुत ही इज्जतसे देखता है। मेरी हर बातपर बड़े ध्यानपूर्वक वे विचार करते हैं, यद्यपि मैं उस योग्य कथमपि नहीं। परिणामतः वैद्य महोदयके पास पहुँचे। करीब एक मासतक लगातार चिकित्सा चलती रही, पर श्रीरणवीरकी हालत अधिक-से-अधिक चिन्ताजनक होती जा रही थी। परिवारके प्रत्येक सदस्यके हृदयपर निराशाने अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। हृदयका धैर्य पिघलकर आँखोंमें आँसू बनकर बरसने लगा। लड़का बहुत ही सम्पन्न और सम्भ्रान्त माता-पिताका लाड़ला

ज्येष्ठ पुत्र है। चौथेपनकी आँखें नित्यप्रति उसे खुश देखनेके लिये बेचैन रहती थीं। किसीकी भी सम्मति माननेके लिये वे सर्वदा तत्पर थे उसकी चिकित्साके सम्बन्धमें।

फिर अभी उस लड़केकी अवस्था भी कितनी है? कली खिलनेके पूर्व ही मुरझाने लगी थी। स्कूलमें शिक्षक उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं मुक्तकण्ठसे उसकी अध्ययनकी अनुपम योग्यताको निरखकर।

वैद्यकी सान्त्वना आशाको जीवन-दान देनेमें असमर्थ रही। सभी जाने-माने साधारण एम० बी० बी० एस० से लेकर अवकाश-प्राप्त प्रमुख चिकित्सक आये। सम्मति दी। अधिकारपूर्ण शब्दोंसे कह गये कि 'लड़केकी हालत किसी भी दशामें नहीं सुधर सकती।' अबतक रणवीरका बोलना, उठना, बैठना और सभी प्रकारकी शारीरिक हलचलें स्थगित हो गयी थीं। धीरजका बाँध ढह गया। जीवनाशा तिरोहित हो चली। सभी व्याकुल और चिन्ताकुल थे इस स्थितिको देखकर।

मैं प्रायः नित्य ही उनके यहाँ जाया करता था। उन दिनों 'ला'-परीक्षाकी तैयारीमें लगा था; अतः जितनेसे आत्म-संतोष होता उतना समय नहीं दे पाता था। दुःखित अवश्य था। एक रात मैंने बघेलसे बातचीतके दौरानमें कहा कि अब अशरण-शरण करुणा-वरुणालयकी शरणमें ही पहुँचनेसे त्राण प्राप्त हो सकता है। जब मनुष्य निराश हो जाता है, तब उसे अन्ततः भगवान्‌की ही शरण दृष्टिगोचर होती है। निष्कर्षपर पहुँचे—क्यों न परम दयालु, औढरदानी भोले-शंकरको स्मरण किया जाय। निश्चित हुआ 'महामृत्युंजय' मन्त्रका अनुष्ठान।

तुलसी जसि भवतब्यता तैसी मिलइ सहाइ।

—के अनुसार एक गैयतरा ग्रामवासी पण्डित टिकमरामजी शास्त्री अप्रत्याशितरूपसे रायपुर आ पहुँचे। मन्त्र प्रारम्भ करनेकी तिथि निश्चित हुई और पण्डितजी तन-मनसे जुट गये इस सुकार्यमें।

मन्त्र-जापका सातवाँ दिन था, परिणाम बहुत ही अलौकिक, अनुपम तथा आश्चर्यमें डालनेवाला निकला। रणवीरने माँको पुकारा। माँ हर्षातिरेकमें आत्मविह्वल हो उठी। वह अकचकी-सी, ठगी-सी प्रस्तर-मूर्तिवत् खड़ी रह गयी। बहन दौड़ी आयी, हँसकर गले लगा लिया। आँखके मोतीदल सहसा गिरकर बिखर गये रणवीरके वक्षःस्थलपर। मन्त्रपर विश्वास दृढ़-से-दृढ़तर हुआ। भजन-कीर्तन भी साथ-साथ चलने लगा। शंकरजीकी आरती दोनों समय नित्यप्रति होने लगी।

ठीक २५ दिनमें सवा लाख मन्त्रका जप सम्पन्न हुआ। अबतक लड़केकी हालतमें आशातीत परिवर्तन परिलक्षित होने लगा। वह कुछ चलने भी लगा। अब वह पूर्ण स्वस्थ और सानन्द है। क्या यह केवलमात्र आजके विज्ञान और डॉक्टरोंपर विश्वास करनेवाले ईश्वरांशोंके लिये आश्चर्यका विषय नहीं है? पाठक ही निर्णय करें। लेखक आशा करता है कि पाठकगण इसे पढ़कर कुछ लाभान्वित अवश्यमेव होंगे।

—एक जानकार

कर्मका फल हाथोंहाथ

बात पुरानी है, परन्तु है सच्ची। पुराने पंजाबके मुजफ्फरगढ़ जिलेमें जंगलके सहारे एक छोटा-सा ग्राम था। वहाँ रामदास नामक एक दरजी रहता था। आस-पासके जमींदारोंके परिवारोंके कपड़े सीकर वह अपने परिवारका भरण-पोषण करता था।

यहाँकी जन-संख्यामें हिंदू पाँच प्रतिशतसे अधिक नहीं थे और उनके आचार-विचार भी मुसलमानोंसे मिलते थे। यह सब होनेपर भी रामदास सीधा-सच्चा भक्त था। उसका साधन था कीर्तन। भगवन्नाम-कीर्तन और भगवान्‌की लीलाओंका गान भी चलता रहता और कपड़े भी सिये जाते। कभी कपड़ा सीनेकी मशीनकी टिक-टिकके साथ नामोच्चारणका तार बँध जाता तो कभी हाथकी सिलाईके साथ लीला-पदोंका गान होता। कलियुगमें अनेकों दोष हैं, किंतु इसमें एक बहुत बड़ा गुण भी है—वह यह कि 'केवल कीर्तनसे ही बेड़ा पार हो जाता है।'

नाम-कीर्तनसे उसका हृदय निर्मल हो गया था। अतः उसका श्रीभगवान्‌से प्रेम तथा संसारसे वैराग्य हो गया। उसका जीवन शान्तिमय तथा संतोषपरायण हो गया। वह हर समय प्रभुकृपाका अनुभव करने लगा।

एक मुसलमान पड़ोसीको एक हिंदूका शान्ति-संतोषसे रहना बुरा लगा। वह सोचता था कि यदि इस काफिरकी मशीन न रहे तो यह अपनी आजीविका अर्जन न कर सकेगा, तब वह और कहीं चला जायगा।

एक दिन उचित अवसर मिलनेपर उसने भक्तजीकी कपड़ा सीनेकी मशीन चुरा ली।

भक्तजी सोचने लगे कि 'मेरे प्रभुको मशीनकी टिक-टिक अच्छी नहीं लगती होगी, तभी तो उन्होंने उसे उठवा दिया है— वह प्रसन्नचित्तसे हाथसे ही कपड़े सीने लगा। उसने मशीनके चले जानेकी सूचना भी पुलिसमें नहीं दी।

इधर भगवान्‌की भक्तवत्सलता जागृत हुई। उनसे भक्तकी यह हानि नहीं देखी गयी। चोरके दायें हाथकी हथेलीमें एक भीषण फोड़ा उठा; जिसमें इतनी पीड़ा थी कि न दिनको चैन, न रातको नींद आती थी। दूसरे ही दिन उसे कोट उट्चूके सरकारी अस्पतालमें जाना पड़ा। डॉक्टरने नस्तर लगाकर पट्टी बाँध दी। औषध-प्रयोगसे जब फोड़ा कुछ अच्छा होने लगा, तब दूसरा फोड़ा निकल आता। चिकित्सक डॉक्टर हैरान था। उसकी समझमें नहीं आ रहा था कि सारे प्रयत्न करनेपर भी उसका हाथ क्यों नहीं अच्छा होता। अन्तमें डॉक्टर इस निश्चयपर पहुँचा कि रोगीने अवश्य ही इस हाथसे कोई घोर पाप किया है।

उसने रोगीसे स्पष्ट कह दिया कि तुमने इस हाथसे कोई घोर पाप किया है, जिसके कारण मेरे अनुभवसिद्ध औषधोंका प्रयोग करनेपर भी लाभ नहीं होता। तुमको अल्लाहसे अपना गुनाह बक्शवाना होगा।

रोगी समझ गया कि रामदासकी कपड़ा सीनेकी मशीन चुरानेसे ही उसको कष्ट भुगतना पड़ा है। उसने ग्राममें आकर उचित अवसरपर मशीन भक्तजीके घरपर रखवा दी और उसके हाथका फोड़ा भी शीघ्र ही ठीक हो गया।

मशीन घरपर देखकर भक्तजी कहने लगे कि श्रीठाकुरजीको टिक-टिक फिर सुननेकी इच्छा हुई होगी।

—निरंजनदास धीर

सरकारी कर्मचारी भी मनुष्य हैं

वीसावदर स्टेशनसे गाड़ी छूटनेवाली ही थी। इंजिनकी सीटी बज चुकी थी। गार्डने झंडी भी दिखा दी थी। इतनेमें ही लगभग आठ-दस ग्रामीणोंका एक दल गार्ड महोदयके पास पहुँचा। सहृदय गार्डने लाल झंडी दिखायी। गाड़ी अभी चली नहीं थी, रुक गयी। ये लोग मजदूर-जैसे दिखायी देते थे। इनमेंसे एकने गार्डके समीप आकर बड़ी ही नम्रताके साथ कहा—'साहेब! हमलोग मजदूरी करने जा रहे हैं। गाँवमें पेटको रोटी नहीं मिलती। जब भूखों मरते-मरते मरनेकी नौबत आ गयी, तब हमलोग घरसे निकले हैं। हमारे पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं है। गाड़ीमें गये बिना आज काम मिलेगा नहीं। तुम दया करके हमलोगोंको ऐसे ही बैठने दो तो हम सब, हमारा सारा परिवार, स्त्री-बच्चे सब तुमको आशीष देंगे।'

गार्डने कहा—परंतु तुमलोगोंको मुफ्त बैठाता हूँ तो मुझे सरकारका अपराधी बनना पड़ता है। तुम्हें कहाँ जाना है?

उसने कहा—साहेब! तुम भरोसा रखो। हम जानते हैं, तुम सरकारी आदमी हो, सरकारी कानूनको तोड़कर हमारी मदद नहीं कर सकते। हमें मजदूरीके पैसे मिलेंगे, तब सबसे पहले हम तुम्हारे टिकटके पैसे पहुँचा देंगे। साहब! रहम करो, हमलोग बहुत दबे आदमी हैं।

वह यों ही कह रहा था कि सबकी आँखोंसे आँसू झर पड़े। गार्डका हृदय पिघला, उन्होंने फिर पूछा—'तुम्हें कहाँ जाना है?'

उसने कहा—साहेब! जूनागढ़ जाना है। परन्तु.........वह फिर रो पड़ा।

पाँच ही मिनटमें यह सब हो गया। गार्डने अपनी जेबसे दस-दस रुपयेके दो नोट निकालकर उस ग्रामीणको दिये और कहा—भाई! मैं भी तुम्हारी ही तरह एक साधारण नौकरी-पेशा आदमी हूँ। मेरे भी स्त्री-बच्चे हैं। भगवान्‌के खाते लिखकर तुम्हें यह पैसे दे रहा हूँ। सरकारी कर्मचारी होकर सरकारी कानूनको भंग नहीं कर सकता तथापि तुम्हारी हालत देखकर मुझे यह भूलना नहीं चाहिये कि 'मैं भी एक मनुष्य हूँ। अतएव अभी तो मैं अपनी जेबसे पैसे दे रहा हूँ। इस कागजपर मेरा नाम-पता लिखा है। किसी दिन तुम्हारे सबके हाथमें पैसे आ जायँ और तुम भगवान्‌को मानते हो तो लौटा देना, नहीं तो कोई बात नहीं।'

इसके बाद सीटी बजा दी, हरी झंडी दिखायी और गाड़ी चल दी। इसी बीचमें वे मजदूर टिकट लेकर गाड़ीपर चढ़ गये थे।

(अखण्ड आनन्द)

—रवि बोरा

आश्चर्यजनक सत्य घटना

विगत भाद्रपद कृष्ण-जन्माष्टमीकी घटना है। मैं भाद्रपद कृष्ण पंचमीको अकस्मात् कुलंग वायुसे पीड़ित हुआ। बायाँ पैर पूर्णतः लुंज हो गया। उठना-बैठना भी दूभर था। चलना-फिरना तो कल्पनातीत था। योगराज गुग्गुलसे समुचित लाभ न देख कृष्ण-जन्माष्टमीको प्रातः एक सद्वैद्यको बुलाया गया। वैद्यराजजीने दो सप्ताहके पूर्ण विश्रामकी परमावश्यकता बतलायी, साथ ही औषधमें सेक तथा रस-सेवन अनिवार्य बतलाया। वैद्यराजके चले जानेके बाद असह्य पीड़ासे छटपटाते हुए मैंने सम्यक्-रूपेण निराश हो गतवर्षका 'कल्याण' निकालकर खोला। दैवात् जिस वाक्यपर दृष्टि गयी, वह इस प्रकार था— 'आप रोगग्रस्त हैं, पीड़ित तथा दुःखी हैं तो भगवान्‌की शरण वरण कीजिये। आपकी पीड़ा दूर होगी, दुःखका शमन होगा। भगवान्‌से बढ़कर सद्वैद्य अन्य नहीं है। वे प्रणतार्तिहारी हैं, दीनबन्धु एवं करुणासिन्धु हैं। चूँकि वैद्यजीकी ओषधिका तैयार करना अत्यन्त असुविधाजनक था। अतः मैंने प्रण किया कि मैं अब किसी भी ओषधिका सेवन नहीं करूँगा।

तदनन्तर मैंने शुद्ध हृदयसे विश्वासके साथ भगवान्‌से प्रार्थना की—'भगवन्! मैं आपकी शरण हूँ, अब आपकी कृपाका ही भरोसा है। आज आपकी जयन्ती है। मैं जन्मोत्सवमें सहर्ष योग दे सकूँ (घरमें झाँकी बनी थी), खड़े होकर प्रार्थना करूँ तथा कल प्रातः नगर-स्थित मन्दिरमें आपकी बाँकी झाँकीके दर्शन करूँ—बस, यही मेरी कामना है।'

दिनभर भगवत्स्मरण करता रहा तथा परिणामतः भगवत्कृपासे ऐसा ही हुआ। रात्रिको जन्मोत्सवके समय मैंने सहर्ष खड़े होकर स्तुति की। दूसरे दिन मन्दिरोंमें भगवान्‌की बाँकी झाँकीके दर्शन किये तथा विद्यालय जाने लगा। भगवान्‌की इस महती अनुकम्पाका हृदयपर जो प्रभाव पड़ा, वह अकथनीय है। भुक्त-भोगी श्रद्धालु भक्त ही इसका अनुभव कर सकते हैं। उस भगवत्कृपाके फलस्वरूप आज कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं, वह आपकी सेवामें प्रेषित कर आशान्वित हूँ कि आप इन्हें इस पत्रके सहित पाठकोंके कल्याणार्थ 'कल्याण' में प्रकाशित करनेकी कृपा करेंगे। 'कल्याण' से प्रेरणा मिली, अतः 'कल्याण' को ही ये भावप्रसून समर्पित हैं।

'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।' इति शुभम्

—सिद्धगोपाल मिश्र 'सुधाकर', एम०ए०

ईश्वरकी अदालतसे डरनेवाला

देशविभाजनसे पूर्वकी बात है। अमृतसरसे कुछ सज्जन लाहौर जानेके लिये स्टेशनपर पहुँचे और एक युवकसे टिकट लानेके लिये कहा। वह युवक गलतीसे एक टिकट कम ले आया; परंतु इस भूलका भेद खुला लाहौर पहुँचकर स्टेशनसे बाहर निकलनेके समय। वे लोग भीड़में बाहर तो निकल गये; परन्तु उनमें एक वयोवृद्ध प्रभुको भजनेवाले सज्जन थे। उन्होंने कहा—'बड़ा अपराध हो गया। हम इस दुनियाकी अदालतमें तो नहीं पकड़े गये, परंतु सर्वदर्शी प्रभुकी अदालतमें कभी नहीं छूट सकते।'

बहुत सोच-विचारके पश्चात् उक्त सज्जनने मस्तिष्क हिलाकर एक युवकसे कहा—'यह लो पैसे, अमृतसर जानेका एक टिकट खरीद लाओ।' साथवाले सब आश्चर्यमें पड़ गये। पूछने लगे—'क्या आप वापस अमृतसर जाना चाहते हैं?' उन्होंने कहा—'देखो तो सही।'

जब वह युवक टिकट लेकर आया, तब इन महान् व्यक्तिने उसके हाथसे टिकट लेकर उसे फाड़ डाला और कहा कि 'अब सरकारी कोषमें पैसे चले गये हैं। शायद प्रभु हमपर दया करके अपराध क्षमा कर दें। इसके सिवा और कोई चारा नहीं था।'

सब लोग देखते रह गये। ऐसे ही लोग धर्म तथा ईमानको जीवित रखे हुए हैं। बात छोटी-सी है, पर नीयतकी दृष्टिसे बहुत बड़ी। अपराधका क्या छोटा, क्या बड़ा। छोटा अपराध करने-वाला ही बड़ा अपराध करता है। धन्य!

—योगेन्द्र भण्डारी, बी० ए०

जीवन-दान

सावनका महीना। अमावस्याकी घोर अन्धकारपूर्ण रात्रि और बूँदा-बाँदी! हाथ-को-हाथ दिखायी नहीं दे रहा था। बादल अपनी सम्पूर्ण शक्तिके साथ दिल दहलानेवाली गर्जना कर रहे थे। कभी-कभी आकाशमें चमकनेवाली दामिनी ही अन्धकारमें दीपकका कार्य कर रही थी।

ऐसी ही भयानक रात्रिमें समाजसे पीड़ित और ठुकरायी हुई एक षोडशी युवती अपने नवजात शिशुको अपने अंकमें लिये गाँवसे बाहर बह रही नदीकी ओर बढ़ रही थी। युवतीकी उम्र यही कोई बीस वर्ष होगी। गौर वर्ण, छरहरा बदन, लम्बा कद और पीठपर फैले हुए घुँघराले बालोंवाली इस युवतीका विवाह हुए अभी तीन ही वर्ष हुए थे कि उसके शराबी और व्यभिचारी पतिने मामूली बोलचालके बदले उसे मार-पीटकर घरसे बाहर निकाल दिया। यही कारण था कि आज वह दुःखके आवेशमें अपना तथा अपने शिशुका जीवन-दीप बुझाने नदीकी ओर बढ़ रही थी!

काले नागकी तरह फुफकारती हुई निस्तब्ध भयानक रात्रि और तिसपर ऊबड़-खाबड़ मार्ग। किसी तरह गिरती-पड़ती वह युवती नदीके किनारे पहुँची। उसने शिशुको अंकमें भर जीभर चूमा और फिर अपनी आधी साड़ी चीरकर उसमें उसे लपेट दिया और उसे लेकर पानीकी धारकी ओर बढ़ी। कमरतक पानीमें पहुँचनेके बाद युवतीने फिर एक बार शिशुके

मस्तकको चूमा और वह उसे पानीमें बहाने जा ही रही थी कि उसे नदी-किनारे कुछ आहट मालूम हुई और आवाज सुनायी दी—'कौन?'

युवती कुछ सहमी और उसने चाहा कि दोनों साथ ही डूबकर मरें कि पीछेसे उसे किसी हाथका स्पर्श हुआ। उसने घूमकर देखा तो एक युवक उसके पास खड़ा था। युवतीने कहा—'मुझे मरने दो। मेरे लिये यही ठीक है।' युवकने कहा—'बहिन! यह जीवन हँस-हँसकर कठिनाइयोंको पार करनेके लिये मिला है। इस प्रकार रोकर आत्मघात करनेके लिये नहीं—।' युवतीको इन शब्दोंमें सच्चे स्नेहका आभास मिला और उसकी आँखें बरस पड़ीं। युवकने उसे बाहर निकाला, ढाढ़स बँधाया और कहा—'आजसे तुम मेरी बहिन हो और मेरे घर ही रहोगी। आओ मेरे साथ।'

युवकने शिशुको अपनी गोदमें लिया और युवतीको लेकर अपने घरकी ओर बढ़ा........।

—सरदारमल जैन, 'प्रभाकर'

ईमानदार गरीब

अभी कुछ दिन पहलेकी बात है कि हमारे पड़ोसमें एक पण्डितजी रहते थे। वहाँ एक गरीब आदमी भी उनके यहाँ आया करता था। एक समय पण्डितजीकी लड़की सौ रुपयेका एक नोट कहीं रखकर भूल गयी। जब पण्डितजीने नोट माँगा, तब उसे याद आयी। लड़कीने सारा घर छान मारा; किंतु नोटका पता नहीं चला। तरह-तरहकी शंकाएँ की जाने लगीं। पण्डितजीने बाड़ेके दो बच्चोंपर संदेह किया। खैर, वे हजारों रुपये कमाते थे। उस सौके नोटको भूल गये। छः महीने बाद उस गरीबके लड़केकी शादी थी। वह पण्डितजीसे सहायता माँगने आया। पण्डितजीने उसे पहले पहननेको एक धोतीका जोड़ा दिया। घर ले जाकर उसने धोतीका जोड़ा खोला तो उसमेंसे एक पर्स गिरा। गरीबने देखा तो उस पर्समें सौ रुपयेका एक नोट है। वह तुरंत पण्डितजीके पास पहुँचा। बोला—'पण्डितजी! आपने जो मुझे धोतीका जोड़ा दिया था, उसमेंसे यह सौ रुपयेका नोट और पर्स निकला है। यह लीजिये।' पण्डितजीने पर्स देखकर कहा कि 'यह तो हमारा ही है। लड़की रखकर भूल गयी थी। इससे धोतीके जोड़ेमें ही पड़ा रह गया।' पण्डितजी आश्चर्यमें पड़कर सोचने लगे कि 'अमीर तो एक-एक पैसेके लिये बेईमानी करते हैं; किन्तु इस गरीबने सौ रुपयेको एक पैसा भी नहीं समझा।' पण्डितजीके आँसू आ गये। उन्होंने कहा कि 'तुम्हारे पुत्रके विवाहमें सारा खर्च मैं करूँगा। तुम किसी भी बातकी चिन्ता न करना। मैं सदा तुम्हारा साथ दूँगा।' फिर उस गरीबके पुत्रके विवाहमें पण्डितजीने हजारों रुपये खर्च किये और गरीबकी ईमानदारीकी इज्जत रखी।

—मनूलाल आवारा

पीपल

भयंकर-से-भयंकर विषधर सर्पका अचूक इलाज

सन् १९४१ की बात है। पूज्य बापूके आदेशानुसार स्वतन्त्रताके संग्राममें मैं लखनऊ डिस्ट्रिक्ट जेलमें था। एक दिन हमारी बैरिकमें रहनेवाले हरदोई जिलाके वयोवृद्ध सत्याग्रहीने (दुर्भाग्यसे मैं उनका नाम भूल गया हूँ, उन्हें अक्सर वैद्यजी कहा करते थे) बैरिकमें रहनेवाले करीब ८०-९० सत्याग्रही सज्जनोंको एक जगह बैठाकर कहा—'आओ, आज अपने साथियोंको अपने अनुभवपूर्ण पीपलवृक्षकी चमत्कारकी बात बतायें। उन्होंने बताया कि संसारमें आजतक काले नागके काटेको अच्छा करनेकी कोई भी ओषधि इतनी अच्छी नहीं ईजाद हुई जितना अच्छा पीपल है। उन्होंने यह भी कहा कि यह बात मैं सुनी हुई नहीं कहता, बल्कि लगभग सौ आदमियोंको मैं स्वयं अच्छा कर चुका हूँ। तब बताता हूँ। उन्होंने बताया कि जब किसीको सर्प काट ले, तब फौरन काफी तन्दुरुस्त बलवान् पाँच आदमियोंको वहाँ ले जाओ। काटे हुए व्यक्तिको बैठा दो। एक-एक आदमी एक-एक पैर दबा ले, एक-एक आदमी दोनों हाथ पकड़ ले ताकि वह व्यक्ति, जिसे सर्पने काटा है, बिलकुल हिल-डुल न सके। पाँचवाँ आदमी, उसी व्यक्तिके पीछे बैठकर मजबूतीसे उसका सिर पकड़ ले ताकि सिर भी हिले नहीं, अब आप फौरन ही पीपलकी एक ऐसी डाल तोड़कर मँगावें, जिसमें बीस-पचीस हरे चमकदार पत्ते

लगे हों। उनमेंसे ऐसे दो पत्ते मय डंठलके (नकुनोंसहित) तोड़िये जो कि टूटा हुआ हिस्सा जहाँसे दूध निकलता है, वह पत्तेका डंठल कानोंमें जा सके। आप पहले एक कानमें देखकर काफी सावधानीसे जैसे कनखुदा मैल निकालता है, उसी तरह धीरेसे डंठल कानमें डालें। यदि सर्पने काटा है तो ज्यों ही लगभग एक इंच डंठल कानके अन्दर जायगा कि वह व्यक्ति, जिसे सर्पने काटा है, इतनी तेजीसे चीखने-चिल्लाने लगेगा, जैसे कोई उसे मारे डाल रहा हो। वह उठकर भागने, पत्ता पकड़ने या मूँड़ हिलाकर पत्ता बाहर निकालनेके सैकड़ों प्रयत्न करेगा। इसी बीच दूसरे कानमें भी उतना ही पत्ता डालकर अब शान्त होकर बैठ जाइये। मरीजको रोने-चीखने-चिल्लाने दीजिये। अधिक-से-अधिक पाँच मिनटमें वह चिल्लाना बंद कर देगा और वह चिल्लाना तभी बंद करेगा जब पत्ते विष सब खींच लेंगे। यदि चिल्लाना न बंद करे तो पत्ते बदल दीजिये और पाँच मिनटतक फिर दूसरे पत्ते लगा दीजिये। चाहे जैसे जहरीले सर्पका विष हो ठीक दस मिनटमें वह ठीक हो जायगा। श्रीमान्‌जी! हरदोईके वैद्यजीके इस प्रयोगको मैंने आकर किया और सन् ४१ से लेकर १७-१८ वर्षोंमें अबतक करीब ७० आदमियोंको मैं अच्छा कर चुका हूँ। अचूक प्रयोग है। यदि सर्पने नहीं काटा है तो कानमें पत्ता डालनेपर वह चुपचाप बैठा रहेगा, यही परीक्षा है कि सर्पका विष नहीं है। सर्पके विषके अतिरिक्त अन्य विषोंमें यह पत्ता काम नहीं करेगा। पत्ता डालनेवालेको खूब सावधान रहना चाहिये। रोगीकी चिल्लाहटसे घबराकर पत्ता हाथसे छोड़ नहीं

देना चाहिये। अन्यथा पत्ता अपने-आप कानमें खिंचकर चला जायगा और पर्दा फाड़ देगा। जहाँसे रोगी चिल्लाने लगे बस वहींसे पत्ता न आगे जाने दें, न पीछे आने दें। दूसरे, कानसे निकाले पत्तोंको या तो जला दें या तो जमीनमें खोदकर गाड़ दें; क्योंकि यदि कोई जानवर उन पत्तोंको खा लेगा तो वह मर जायगा। जिन सज्जनोंको कोई भ्रम हो या जो विशेष जानकारी करना चाहें तो मुझे पत्र डालकर पूछकर भ्रम निवारण कर सकते हैं, किंतु पूछनेवालेको चाहिये कि वे जवाबी कार्ड भेजें और लिफाफामें उत्तर चाहें तो टिकट भेजें।

—मेवालाल तार्किक—मु० पो० भूसानगर, जिला-कानपुर

श्रीहनूमान्जीकी कृपा

किसी जिलेके एक उच्चाधिकारी महोदय तीर्थयात्राके उद्देश्यसे श्रीचित्रकूट स्टेशनपर पधारे। ताँगा या किसी सवारीके अभावमें उन्होंने सोचा कि पहले सवारियोंके साधन न होनेपर लोग पैदल ही तीर्थयात्रा करते थे, तब हम भी पैदल क्यों न चलें! यों सोचकर वे दो मजदूरोंको लेकर चित्रकूटको चल दिये। दो बच्चोंको दो मजदूरोंने लिया और अधिकारी महोदयकी धर्मपत्नीने एक बच्चेको गोदमें लेकर प्रस्थान किया। वहाँसे चलकर वे पयस्विनीजीके तटपर पहुँच गये। पहुँचनेपर अधिकारी महोदयने कहा कि 'पहले मैं स्नान कर लूँ, फिर और लोगोंको स्नान करा दूँगा।' वे चले गये। श्रीमतीजीने सोचा कि मैं भी नहा लूँ और छोटे बच्चेको लेकर वे भी स्नानके लिये चलीं। बच्चेको किनारेपर बैठाकर वे गंगाजीमें स्नान करने लगीं। वे स्नान-भजनमें तन्मय हो गयीं। बच्चेका ध्यान नहीं रहा। इसी समय वह किनारेपर बैठा हुआ बच्चा नदीमें खिसक गया। लड़केका ध्यान आते ही देखा तो बच्चा जहाँ बैठा था वहाँ नहीं दिखायी दिया। तब तो वे बड़े जोरसे रोने-चिल्लाने लगीं। मजदूर भी दौड़े। अधिकारी महोदयने सुना तो वे भी दौड़े। बच्चेको ढूँढ़ा, पर कहीं नहीं पाया।

इधर माता जब बच्चेके लिये बेचैन होकर रो रही थी, तभी उसका ध्यान श्रीभगवान्‌की कृपा-सुधाकी ओर गया। उन्होंने रोते-रोते ही कहा—'भगवन्! चित्रकूट आनेपर दुःख दूर होते

हैं, मुझे यह महान् दुःख क्यों दिया गया?' उनका विलाप बढ़ता ही गया। वे जोरसे रोकर हाथ उठाकर कहने लगीं—'हे बूढ़े हनुमान्‌जी! तुम्हें रामजीकी दुहाई है, हमारे लड़केको ढूँढ़कर तुरन्त ला दो।' इस करुण प्रार्थनाको सुनकर एक मोटा-ताजा बंदर पासके पीपलके वृक्षसे गंगाजीमें कूद पड़ा और कुछ ही देरमें बच्चेका हाथ पकड़कर लाकर किनारेपर बैठा दिया। उस बंदरको केवल उन श्रीमान् अधिकारी महोदय, श्रीमतीजी तथा पासके सज्जनोंने देखा। किंतु उसी समय वह बंदर अदृश्य हो गया।

उन दोनोंके हर्षका पार नहीं रहा। उन्होंने बच्चेके मिलनेकी खुशीमें चित्रकूटकी महिमाका विशद वर्णन किया। बच्चोंको और बंदरोंको मिठाई बाँटी गयी। तत्पश्चात् वे चित्रकूटजीकी परिक्रमा करके अपने पूर्वनिश्चित स्थानपर चले गये।

मैं स्वयं उस समय गंगाजीमें स्नान कर रहा था, किंतु मैं अधिक दूर था। इसलिये मैं उस बंदरको नहीं देख पाया।

—रामेश्वरप्रसाद गुप्त

ईमानदार ड्राइवर

ड्राइवर श्रीसुधीरकुमार पाल एक यात्रीको छोड़कर जब वापस लौटा, तब उसने देखा कि उस यात्रीके आभूषणोंका बक्सा टैक्सीमें रह गया है। वह पुनः वापस गया और बक्सा उसके मालिकको दे आया। बक्सामें १५ हजार रुपयेके मूल्यके आभूषण थे।

ड्राइवर सुधीरकुमारने किसी प्रकारका पुरस्कार लेना अस्वीकार कर दिया।

—'नवभारत टाइम्स'

ईश्वरमें आस्था

यह घटना आजके कुछ वर्ष पूर्वकी है। १५ अगस्त सन् १९४७ के दिन भारतको स्वतन्त्रता तो मिली; किन्तु उस स्वतन्त्रताका जो मूल्य पाकिस्तानमें तमाम हिंदुओंको और भारतके कुछ प्रान्तोंमें मुसलमानोंको बुरी तरह चुकाना पड़ा, उसे याद करके आज भी हमारे हृदय दहल उठते हैं। मेरे एक मित्र, जो बी०एस-सी० में मेरे साथ पढ़ते थे, एक पंजाबी शरणार्थी हैं। उन्होंने जो घटना मुझे उन दिनोंकी सुनायी, वह ईश्वरमें आस्था उत्पन्न करनेके लिये बहुत सहायक सिद्ध हो सकती है।

घटना इस प्रकार है—वे अपने परिवारसहित आजादीके पहले पश्चिमी पंजाबके रावलपिंडी जिलेके एक कस्बेमें रहते थे। उनके पिता उस कस्बेके स्टेशनमास्टर थे। आजादीके पहले ही गाँवोंमें दंगे शुरू हो गये। मेरे मित्रकी माताने अपने पतिसे कहा कि 'अब हमें भारत चल देना चाहिये। यहाँ रहनेमें बहुत खतरा है।' किन्तु मास्टरसाहब सात्त्विक प्रकृतिके थे, वे अपने सात्त्विक स्वभावके कारण दंगोंके भयानक परिणामोंके बारेमें विचार नहीं कर सके और बोले—'अभी क्या चिंता है? सरकार उन गुंडोंको पकड़कर जेलमें डाल देगी जो उपद्रव करेंगे।' किन्तु पत्नीको विश्वास नहीं हुआ, वह अपने परिवारसहित रावलपिंडी आकर अन्य सम्बन्धियोंके साथ भारतमें जालन्धर शहरमें अपने निकटके रिश्तेदारके घर आ गयी। मास्टरसाहबसे बहुत आग्रह किया, किन्तु वे अपनी ड्यूटीपर कर्तव्यपरायणता दिखाना चाहते थे। अतः वे नहीं आये। इधर जालन्धरमें उनकी पत्नी अपने पतिके बारेमें बहुत चिन्तित रहने लगी और उनकी कुशलताके लिये ईश्वरसे नित्य प्रार्थना करने लगी। आजादी मिलनेपर तो दंगोंने और भी भयानक रूप धारण कर लिया। दोनों ही भागोंमें भीषण

नरसंहार शुरू हो गया। मेरे मित्रकी माताको अब और चिन्ता होने लगी। एक दिन ज्यों ही वह पूजा समाप्त कर बाहर आयी, त्यों ही उसके पति एक मित्रके साथ आ गये। चारों ओर घरमें खुशी छा गयी। जब उनसे पूछा कि आप कैसे बचे, तब उन्होंने कहा—'तुमलोगोंके जानेके बाद दंगे बढ़ने लगे। सरकार कुछ नहीं कर रही थी। मुस्लिम गुंडे घोर उपद्रव मचा रहे थे। हिन्दू सर्वथा नि:सहाय थे। उनके घर-बार, इज्जत, धन, जन आदि सब बुरी तरह लूटे जा रहे थे। एक दिन जब मैं ऑफिसमें बैठा काम कर रहा था, तब बाहर बड़ा शोर सुनायी पड़ा और यह कहते सुना कि 'स्टेशनमास्टर हिंदू है, उसे मार डालो।' यह बात सुनकर मेरे रोंगटे खड़े हो गये। बचावका कोई उपाय नहीं सूझा और मैं ईश्वर-स्मरण करने लगा और मनमें राम-नामका स्मरण करने लगा! जब शोर बढ़ने लगा तब मैं ऑफिसके अंदर एक बड़ी टेबलके नीचे घुस गया और आड़े एक कुर्सी लगा दी। थोड़ी ही देरमें गुंडे अंदर आये और मुझे इधर-उधर ढूँढ़ने लगे, किंतु ईश्वरकी अद्भुत कृपा थी कि उनकी दृष्टि मुझपर नहीं पड़ी। वे निराश होकर अन्यत्र दंगा करने चले गये। बादमें भी ईश्वरकी ही कृपा थी कि थोड़ी देरमें एक ट्रेन जो कुछ हिन्दू सेनाके नेतृत्वमें हिन्दुओंको लेकर भारत जा रही थी, उस स्टेशनसे गुजरी, मैं जल्दीसे उसमें सवार हो गया। फिर ईश्वरकी कृपासे सकुशल यहाँ पहुँच गया।' इस सच्ची घटनाको पढ़कर किसे विश्वास नहीं होगा कि ईश्वरको आर्तस्वरसे पुकारनेपर अथवा इसके समयानुकूल स्मरण करनेपर वह रक्षा नहीं करता। ईश्वरमें आस्था उत्पन्न करनेके लिये यह घटना बड़ी अच्छी है।

—श्याममनोहर व्यास, बी०एस-सी०

भलेका भला और बुरेका बुरा फल

ईश्वरदास, रतनलाल और रामनारायण—तीनों भाई थे। पिताकी जीवित अवस्थामें ईश्वरदास और रतनलाल व्यापारका काम देखते थे—रामनारायण पढ़ता था। ईश्वरदास ईमानदार, दृढ़ परिश्रमी, उदार तथा सरल हृदयका मनुष्य था। रतनलाल चतुर, चालाक, स्वार्थी तथा कार्यनिपुण था और उसके मनमें अपनी बुद्धिमत्ताका मद भी था। रामनारायण था तो बड़ा बुद्धिमान्, सूक्ष्मदर्शी—पर उसका मन अभी पढ़ाईमें लगा था। पिताकी जीवित अवस्थामें ही चतुर रतनलालने अपना प्रभुत्व जमा लिया। घरभरमें उसका आतंक था। ईश्वरदास उसके आज्ञानुसार कार्य करता था। ईश्वरदासके मनमें भाई रतनलालके प्रति अपार विश्वास था, पर रतनलालके मनमें किसी कुसंगवश नीच स्वार्थ आ गया था। पिताके मरते ही रतनलालने दोनों भाइयोंको कुछ भी न देकर अलग कर देना चाहा। सारा कारोबार तथा पूँजी उसीके हाथमें थी। रतनलालकी स्त्री लक्ष्मीदेवी बड़ी साध्वी थी। उसे पतिकी इस नीयतको देखकर बड़ा दुःख हुआ। उसने समझानेकी भी बड़ी चेष्टा की; पर जहाँ मनुष्य नीच स्वार्थमें फँस जाता है, वहाँ उसकी बुद्धि उलटा ही सोचती है। रतनलालने दोनों भाइयोंको कुछ भी न देकर अलग कर दिया। सारा मालमत्ता—पूँजी पहलेसे ही उसके हाथमें थी। बड़ा भाई ईश्वरदास अपनी पत्नी सरस्वती, एक लड़की तथा भाई रामनारायणको साथ लेकर

खाली हाथ घरसे निकल गया। रतनलालने संतोषकी साँस ली, उसे अपनी नीच करनीपर—सफलताका बड़ा गर्व था!

भगवान्‌की व्यवस्थाका किसीको पता नहीं लगता। ईश्वरदास और रामनारायण सेठ हरजीमलजीके यहाँ नौकरी करने लगे। उधर रतनलालका करोबार बड़े वेगसे चलने लगा। उसने मकान खरीद लिया। बड़ी शानसे रहने लगा। उसकी साध्वी पत्नी लक्ष्मीको इससे बड़ा मनःकष्ट था; पर वह बेचारी निरुपाय थी। ईश्वरदास और रामनारायणके काम, परिश्रम, सचाई, ईमानदारी तथा स्वामिभक्तिसे हरजीमल विमुग्ध हो गये। कई मौके आये। हरजीमलजीने परीक्षाके लिये भी जान-बूझकर ऐसे अवसर उपस्थित किये, पर ईश्वरदास और रामनारायणको सदा खरा सोना पाया। एक बार हरजीमलको बड़ी भारी विपत्तिसे दोनों भाइयोंने सारी विपत्ति अपने ऊपर लेकर बचाया। हरजीमलका हृदय कृतज्ञतासे भर गया। उनके कोई संतान नहीं थी। बहुत पूँजी पास थी। उन्होंने दोनोंको दत्तक मानकर सारी पूँजी तथा कारोबार दोनोंके नाम कर दिया। दोनों लगभग करोड़पति हो गये। उधर रतनलाल एक हिसाबके गोलमालके मामलेमें पुलिसके द्वारा पकड़ा गया और जेल भेज दिया गया। उसपर फौजदारी केस चला। सट्टेका बड़ा सौदा खड़ा था। बाजार विपरीत हो गया और रतनलालका मकान ही नहीं, सारी पूँजी समाप्त हो गयी। सब कुछ जाकर और भी ऋण हो गया। यह सब तीन-चार महीनेके अंदर ही हो गया। उस समय ईश्वरदास और रामनारायण दोनों देश गये थे। रामनारायणका विवाह था।

उन्हें देशमें भाई रतनलालकी विपत्तिका पता लगा। विवाह होते ही दोनों भाई तुरन्त देशसे लौट आये। जेलमें रतनलालसे मिले। उसे बड़ी जमानत देकर छुड़ाया। मुकद्दमेकी पैरवी अच्छे वकीलोंसे करवायी। रतनलाल छूट गया, पर उसे लोगोंके रुपये देने थे। दोनों भाइयोंने मिलकर उसका सारा कर्ज चुकाया और उसको अपने साथ रखकर तीसरे भाईके नाते तीसरे हिस्सेका पूरा हिस्सेदार बना लिया। बात बहुत लम्बी है, संक्षेपसे लिखी है। रतनलालका हृदय पलटा, पर उसको बड़ी मानस पीड़ा हुई। वह पागल हो गया। उसकी तीन संतान थीं। तीनोंका विवाह ताऊ तथा चाचाने भलीभाँति किये। दोनों लड़की ससुराल चली गयीं। लड़का श्रीधर अपने ताऊ-चाचाके साथ घरका मालिक बनकर काम करने लगा।

उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥

कुछ दिनों बाद पागलखानेमें ही रतनलालका हार्ट फेल होकर एक दिन मृत्यु हो गयी। भाइयोंको बड़ा दुःख हुआ; पर वे निरुपाय थे। उन्होंने रतनलालकी साध्वी स्त्रीको बड़े ही आदरसे घरकी मालकिन बनाकर रखा। उसकी जेठानी सरस्वती और नव-विवाहिता देवरानी दुर्गा उसके आदेशानुसार घरका सारा काम करतीं। घर धन-धान्यसे, प्रेम-स्नेहसे सम्पन्न शान्ति-स्वर्ग बन गया!

—बृजमोहन

गाँगुली महाशयकी महानता

श्रीसत्यकृष्ण गाँगुली महोदय उन दिनों सीनियर स्कालर (Senior Scholar) थे। इसके अतिरिक्त वे संस्कृत, अरबी तथा फारसीके भी अच्छे ज्ञाता थे। भारत सरकारके विदेशी-विभाग (Foreign Department)-में चार सौ रुपये मासिकपर प्रधान अनुवादक (Head Translator)-का काम करते थे।

एक दिन उनके ऑफिसके एक क्लर्कको किसी दोषके कारण नौकरीसे अलग कर दिया गया। क्लर्कने गाँगुली महाशयसे अपीलकी दरखास्त लिखवाकर ऊपर भेज दी। इस दरखास्तमें ऑफिसके बहुत-से ऐसे दोष दिखाये गये थे, जिनका कोई उत्तर नहीं था। उच्चपदस्थ कर्मचारीके अतिरिक्त इन सब भेदोंके जाननेकी और किसीके लिये सम्भावना नहीं थी। बड़े साहब दरखास्त पढ़कर यह समझ गये कि दरखास्त गाँगुली महोदयकी लिखी हुई है। उन्होंने गाँगुली महाशयको बुलाकर पूछा। गाँगुलीजीने कहा—'जी हाँ! दरखास्त तो मैने ही लिख दी थी।' साहब बोले—'आपने ऑफिसकी बहुत-सी गुप्त बातोंको क्यों प्रकट कर दिया?' इसपर वे बोले—'वे सब न लिखता तो उस गरीबकी नौकरी चली जाती।' साहबने कहा—'जाँचके समय आप यह मत कहियेगा कि दरखास्त आपने लिखकर दी है, नहीं तो आपकी नौकरी जा सकती है।' इसपर गाँगुली महोदयने कहा—'नौकरी चली जानेमें कोई हर्ज नहीं है, पेट पालनेको काम तो और भी मिल जा सकता है; परंतु सत्यभंग होनेपर तो सर्वनाश ही हो जायगा। मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं कभी झूठ नहीं बोलूँगा और न मिथ्या आचरण करूँगा।'

साहब उनके चरित्रपर मुग्ध हो गये। वे उनको छोड़ना नहीं चाहते थे, इसलिये बोले—'आप एक बार सोचकर देखें आप ऊँचे पदपर हैं, आगे चलकर आपका वेतन एक हजारसे भी अधिक हो जायगा। आप क्या उसे खो देंगे! तीन दिनों बाद बताइयेगा।' तीन दिनके बाद उन्होंने लिखकर दे दिया कि अमुक व्यक्तिकी दरखास्त मैंने ही लिखी थी। यों स्वीकार कर लेनेपर उनकी नौकरी चली गयी। वे शिमलासे घर लौट आये। इसके बाद उन्हें (Official assgnee) ऑफिसमें नौकरी मिल गयी। इस सत्य निष्ठाके लिये लोग उन्हें कलिके युधिष्ठिर कहते!

एक दिन सबेरे नौ बजेकी ट्रेनसे श्रीगाँगुली महाशय बालीसे कलकत्ता ऑफिसमें जानेके लिये स्टेशनपर आये। ट्रेन आनेमें कुछ देर थी, इसलिये वे स्टेशनपर बैठे थे। इसी समय एक अपरिचित व्यक्तिने पास आकर कहा—'महाशय! मेरा यह बैग आपके पास रखा है, मैं अभी आता हूँ!' गाँगुली महोदय बोले—'देर न कीजियेगा, मुझे इसी ट्रेनसे कलकत्ते जाना है।' वह मनुष्य 'अच्छी बात है' कहकर चला गया। ट्रेन आयी और चली गयी, पर वह दिखायी नहीं दिया। गाँगुलीजी दिनभर बैग लिये स्टेशनपर बैठे रहे। उस आदमीका नाम-पता कुछ मालूम नहीं था कि उसके घर बैग पहुँचाकर छुटकारा पा लें। दिनभर प्रसन्नचित्तसे हरिनाम-जप करते रहे। संध्याके कुछ पहले वह आदमी आया और गाँगुली महाशयको बैग सँभाले बैठे देखकर चकितहृदयसे बार-बार क्षमा माँगने लगा। उस दिन गाँगुलीजी ऑफिस नहीं जा सके।

—'भारताजिर'

और दीपक जल उठा

आँधी, वर्षा, ओले, तूफान अपने पूरे वेगपर था उस रात। उसे चिन्ता थी अपने लाड़लेकी, जो हर क्षण कालकी विकराल और अंधकारमयी सीमाकी ओर बढ़ता चला जा रहा था। किंतु वह इतनी साधनहीन हो चुकी थी कि घरमें दीपक जलानेके लिये तेल भी न था। काश, वह अपने दम-तोड़ रहे लालको किसी भी मूल्यपर बचा पाती। यदि और कुछ नहीं तो उसके उन अन्तिम क्षणोंमें वह उस मुरझाकर बिखरनेवाले फूलका मुख तो देख सकती—किसी दीपककी लौमें।

× × ×

वह आरम्भसे ही इतनी निर्धन हो—यह बात नहीं थी। उसका पति मिलिटरीमें मेजर था और कभी विवश होकर उसने अपने पदसे त्याग-पत्र दे दिया था। पर अब वह फिर अच्छी नौकरीपर था और उन सबका निर्वाह बड़े आरामसे हो रहा था। फिर उनके पास अपनी जमीन भी तो थी। अन्य सम्बन्धी भी धनवान् थे। उसका पिता.......बादशाहका मुख्यमन्त्री था। अपने पूर्वकर्मों और विधिके विधानोंसे बँधी उस मिलिटरीके नवयुवकके साथ पाणिग्रहण करनेके पश्चात् वह भारत आ गयी। अपने देशके इतने बड़े और सम्पन्न परिवारकी बेटीके भाग्यमें यह घोर दरिद्रताके बुरे दिन भी विधाताने लिख छोड़े थे, यह किसे पता था!

× × ×

बात कुछ यों हुई कि उसके पतिपर एक मुकद्दमा चल

गया। झूठा था या सच्चा—यह तो परमात्मा जानें; क्योंकि अभीतक उसका कोई निश्चित फैसला न्यायालयसे नहीं हो पाया था। जमानत न दे सकनेके कारण पुलिस उसके पतिको पकड़कर ले गयी। उस युवतीके यौवनको देखकर सिपाहियों तथा अन्य बुरे पुरुषोंकी नजरें बदल गयीं। उसे भाँति-भाँतिके प्रलोभन दिये जाने लगे—'तुम हमारे साथ चलो। संसारके सब सुख, ऐश्वर्य लाकर तुम्हारे कदमोंमें रख दिये जायँगे।' 'मेरे पास रहा करना तुम। किसी भी चीजकी कमी कभी तुम्हें महसूस नहीं होने दी जायगी। छोड़ दो अपने पतिके वापस आनेकी आशा अब।' और ऐसी ही न जाने कितनी और बातें! परंतु वह अपने धर्मपर अटल रही। उसने निश्चय कर लिया था कि जीना है तो धर्मके रास्तेपर चलकर, अन्यथा इससे तो मृत्यु ही भली। बहुत बार उसे आत्महत्याका भी विचार आता, पर अपने पाँच वर्षके लाड़ले और तीन वर्षकी मुन्नीको देखकर साहस न होता। आखिर वह उन्हें किसके सहारे छोड़ती? सब सम्बन्धी भी तो मुख मोड़ चुके थे। जिन्होंने उसके पतिकी जमानततक नहीं दी थी, उन्हींके अनिश्चित टुकड़ोंपर बच्चोंको छोड़नेकी अपेक्षा उसने जीवित रहकर कठिनाइयोंका सामना करते हुए पेट भरनेका निश्चय कर लिया। पतिके सिख होनेके कारण उसे गुरु नानकपर अपार श्रद्धा थी, अटल विश्वास था। उसे पूरा विश्वास था कि वही 'बाबा' उसके पतिको छुड़ाकर लायेंगे और उनकी भी रक्षा करेंगे।

पहले तो उसके पास जो पैसे थे, उन्हींकी सहायतासे दोनों समय पेटकी ज्वाला शान्त की जाती, पर धीरे-धीरे वे समाप्त

हो गये। उसने एक-एक करके अपने आभूषण भी बेच डाले और जब भूखों मरनेकी नौबत आ गयी, तब कुछ दयालु पड़ोसी कुछ दिनोंतक आटा-दाल भेजते रहे। घरके नामपर उसके पास एक छोटा-सा कमरा था। टूटी-फूटी दो खाटें, एक-दो बर्तन और कपड़ोंके नामको बदनाम करनेवाले कुछ चींथड़े—और एक दीया, जिसकी लौमें बैठकर वह कुछ काम कर लेती थी रातके समय। बस, यही थी उसकी पूँजी, उसका सर्वस्व! विदेशमें अपने घरकी याद करके उसे क्या होता होगा, इसका अनुमान भी कोई कैसे कर सकता है।

× × ×

रुग्णता और निर्धनताका चोली-दामनका साथ है। जाड़ेके दिन। शरीरपर पूरे कपड़े भी नहीं। बच्चेको सर्दी लग गयी और ज्वर हो गया और वह बढ़ता ही गया। दवातक लानेके लिये उसके पास पैसे नहीं थे। खाना-पीना तो भूल गया और हर तरहसे वह बच्चेको बचानेकी कोशिशमें लग गयी। उसके पास प्रकाश करनेके लिये दीयेमें तेल भी न था और फिर रोज-रोज माँगनेपर तो कोई देता भी नहीं। बाहर बड़े जोरका तूफान आ रहा था। ऐसा लगता था मानो इसीके साथ ही उसके जीवनका दीपक—जिसके सहारे वह आजतक जीवित थी—बुझ जायगा। अपने 'बाबा' के सामने अपना दुःख खोलकर रख दिया उसने। आँसुओंकी झड़ी लग गयी। सच्चे दिलसे प्रार्थना निकल उठी—'बाबा! मेरे बच्चेको बचा लो। इस परिवारका चिराग बुझ रहा है। तुम्हीं रोक सकते हो। मेरे दीपकको जला दो, मैं अपने लालका मुँह तो देख सकूँ। यदि इस गहन अन्धकारमें ही यह

विलीन हो गया तो तुम्हें कोई भी भक्तवत्सल न कहेगा।' दिलसे निकली पुकार सीधे दिलपर असर करती है और फिर, सुना है, भगवान् तो हैं ही बहुत कोमल-हृदय। उसकी पुकार कैसे अनसुनी कर सकते थे। उसने देखा, कमरा एकाएक प्रकाशसे भर गया। वह हैरान रह गयी देखकर कि दीपक जल रहा था, पुरानी छोटी-सी बाती उसमें थी—तेलका नाम-निशान नहीं था। उसने सोचा, शायद आँखें धोखा दे रही हैं। भागी-भागी गयी वह पड़ोसिनको बुलाने। पड़ोसियोंने देखा—सबने देखा बच्चा पहलेसे काफी स्वस्थ था और दीया जल रहा था बिना तेलके और वह दीपक जलता ही रहा सम्पूर्ण रात्रि।

धन्य हैं भक्तवत्सल भगवान् और उनके भक्त!

—बीना चौधरी

आदर्श मानवता

यह घटना भी उन्हीं दिनों सन् १९४७ की है, जिन दिनों राजस्थानके उत्तरी-पूर्वी जिलोंमें उपद्रव मच रहे थे। पाकिस्तानमें हो रहे हिंदुओंपर भीषण अत्याचारोंके समाचारोंको सुनकर हिंदुओंमें अत्यन्त क्षोभ छा रहा था। इससे यहाँ भी गृहदाह, लूट-पाट और हत्याकाण्ड आरम्भ हो गये। इस कुसमयमें हमें एक घटना ऐसी देखनेको मिली जो मानवताका एक अद्भुत उदाहरण है। जिलेके एक गाँवमें एक रिटायर्ड मुसलमान अफसर रहता था! उसके पड़ोसमें एक हिंदू ब्राह्मण रहता था, जो कभी उस अफसरके पास एक चतुर्थ श्रेणीका कर्मचारी रह चुका था। साम्प्रदायिकताकी लहर उस गाँवमें भी पहुँची। मुसलमानोंको सब कुछ छोड़कर भागना पड़ रहा था और उनकी जान खतरेमें थी। अतः उस मुस्लिम अफसरको भी अपना और अपने परिवारका भय हुआ और उसने अपने पुराने ब्राह्मण पड़ोसी नौकरसे बचनेका उपाय पूछा। उसने कहा—'आप चिन्ता मत कीजिये। मैं आपके परिवारसहित आपको सकुशल युक्तप्रान्तमें पहुँचा दूँगा; जहाँ आप अपनेको सुरक्षित समझेंगे।' इतना कहनेपर भी मुस्लिम अफसरको विश्वास नहीं हुआ। रातके समय वह ब्राह्मण पड़ोसी एक ट्रक किरायेपर लाया। वह खुद भी ट्रक चलाना जानता था, उसने वह ट्रक मुसलमान अफसरके घरके सामने खड़ी कर दी। उसने मुस्लिम अफसरको और उसके परिवारके सब लोगोंको उसमें बैठा दिया और उनके ऊपर

चादर-कपड़े आदि डाल दिये और उनको समझाकर कह दिया कि वे रास्तेभर चुप रहें। फिर वह ट्रक चलाकर गाँवके बाहर निकल गया। ट्रक अपनी पूरी गतिसे जा रही थी। एक स्थानपर बहुत-से हिंदुओंने ट्रकको रोक लिया और उससे पूछा कि 'इस ट्रकमें क्या है, कोई मुसलमान तो छिपकर नहीं जा रहा है?' उसने कहा कि 'यह सामान तो एक हिंदू अफसरका है, जो मेरठके पास एक गाँवमें रहते हैं। उनका तबादला हो गया है, अतः मैं उनका सामान उनके घर पहुँचाने जा रहा हूँ।' कुछ हिंदू उसको जानते थे। उसे ब्राह्मण समझ उसकी बातोंको सच मानकर उन्होंने ट्रकको जाने दिया। रातका समय था। फिर आगे किसीने ट्रक नहीं रोकी। थोड़ी ही देरमें ट्रक यू०पी० (U.P.) के एक गाँवमें आ पहुँची, जहाँ उस मुस्लिम अफसरके रिश्तेदार रहते थे। अफसर अपने परिवारसहित वहीं रुक गया और उसने उस ब्राह्मण पड़ोसीके प्रति अपने और अपने परिवारके प्राणोंकी रक्षाके लिये बहुत कृतज्ञता प्रकट की। वह ब्राह्मण पड़ोसी सकुशल वापस अपने गाँवको लौट गया। उन दुर्दिनोंमें एक रिटायर्ड अफसरके प्रति एक पुराने नौकरके द्वारा सच्ची स्वामिभक्ति दिखलानेका एवं आदर्श पड़ोसी-धर्म तथा सच्ची मानवताका एक अद्भुत उदाहरण है। यह घटना उसी नौकरने मुझे सुनायी है और अभी भी वह नौकर है, जहाँ मेरे अग्रज भ्राता न्यायाधीश हैं।

—श्याममनोहर व्यास, बी०एस-सी०

अनुभूत सत्य

(रोग-मुक्तिका अनुभूत सहज साधन)

[एक सज्जन अपना नाम-पता कुछ भी न बताकर लिखते हैं—]

मैं इन साधनोंके फलस्वरूप भयंकर कुष्ठरोगके चंगुलसे बच निकला हूँ। कुष्ठ, क्षय (टी०बी०) अथवा कोई भी रोग क्यों न हो, इन साधनोंसे नष्ट हो जाता है। परीक्षा करके देख लें—

(१) प्रतिदिन प्रातःकाल ४ बजे स्नान करके आक (अर्क या मदार, जिसका दूध लगानेसे आँखें नष्ट हो जाती हैं)-के पेड़पर जल चढ़ावे। ४१ दिनोंतक प्रतिदिन जल चढ़ाकर ४१ वें दिन चावल, रोली और गुड़से आकके वृक्षकी पूजा करे।

(२) दो महीनेतक प्रत्येक चौथे दिन (बिना ब्यायी) बछियाका गोमूत्र एक छटाँक (अधिक नहीं) पान करे। सुबह खाली पेट ताजा गो-मूत्र पीना चाहिये।

(३) प्रतिदिन सुबह-शाम भ्रामरी प्राणायाम करे। विधि यह है—खुली हवामें बैठकर पहले नासिकाके दाहिने छिद्रको दाहिने हाथकी अंगुलीसे बंद करके बायें नथुनेसे हवा खींचे, फिर बायें छिद्रको बंद करके दाहिने नथुनेसे भ्रमरकी तरह गुंजन करते हुए धीरे-धीरे हवा छोड़े। पुनः इसी प्रकार दाहिनेसे खींचकर बायेंसे भ्रमर-गुंजनसहित छोड़े। इस प्रकार आठ-दस बार करे और मनको कानकी भीतरी आवाजपर केन्द्रित करे। इसे जीवनभर करता रहे तो यह बहुत ही लाभदायक है।

तीनों साधनोंको साथ-साथ करनेवाला निःसंदेह बहुत शीघ्र रोग-मुक्त होगा। शर्त यह है कि जो कोई भी इन साधनोंसे रोग-मुक्त हो, वह फिर सात्त्विक और सत्-जीवन बितावे। नहीं तो वह मुझसे ही नहीं, भगवान्‌से भी विश्वासघात करेगा।

—मानव-हितैषी अज्ञात

॥ श्रीहरिः ॥

नित्यपाठ, साधन-भजन एवं कर्मकाण्ड-हेतु

कोड	पुस्तक
592	**नित्यकर्म-पूजाप्रकाश** [गुजराती, तेलुगु भी]
1593	**अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश**
1895	**जीवच्छ्राद्ध-पद्धति**
1809	**गया श्राद्ध-पद्धति**
1928	**त्रिपिण्डी श्राद्ध-पद्धति**
1416	**गरुडपुराण-सारोद्धार** (सानुवाद)
1627	**रुद्राष्टाध्यायी**-सानुवाद
1417	**शिवस्तोत्ररत्नाकर**
1774	**देवीस्तोत्ररत्नाकर**
1623	**ललितासहस्रनामस्तोत्रम्**- [तेलुगु भी]
610	**व्रत-परिचय**
1162	**एकादशी-व्रतका माहात्म्य**— मोटा टाइप [गुजराती भी]
1136	**वैशाख-कार्तिक-माघमास-माहात्म्य**
1588	**माघमासका माहात्म्य**
1899	**श्रावणमासका माहात्म्य**
1367	**श्रीसत्यनारायण-व्रतकथा**
052	**स्तोत्ररत्नावली**—सानुवाद [तेलुगु, बँगला भी]
1629	,, ,, सजिल्द
1567	**दुर्गासप्तशती**— मूल, मोटा (बेड़िया)
876	,, मूल गुटका
1727	,, मूल, लघु आकार
1346	,, सानुवाद मोटा टाइप
118	,, सानुवाद [गुजराती, बँगला, ओड़िआ भी]
489	,, सानुवाद, सजिल्द [गुजराती भी]
1281	**दुर्गासप्तशती** (विशिष्ट सं०)
866	,, केवल हिन्दी
1161	,, केवल हिन्दी मोटा टाइप, सजिल्द
819	**श्रीविष्णुसहस्रनाम**-शांकरभाष्य
206	**श्रीविष्णुसहस्रनाम**—सटीक
226	**श्रीविष्णुसहस्रनाम**—मूल, [मलयालम, तेलुगु, कन्नड, तमिल, गुजराती भी]
1872	**श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्** -लघु
509	**सूक्ति-सुधाकर**
1801	**श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्** (हिन्दी-अनुवादसहित)
207	**रामस्तवराज**—(सटीक)
211	**आदित्यहृदयस्तोत्रम्**— हिन्दी-अंग्रेजी-अनुवादसहित [ओड़िआ भी]
224	**श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र** [तेलुगु, ओड़िआ भी]
231	**रामरक्षास्तोत्रम्**— [तेलुगु, ओड़िआ, अंग्रेजी भी]
1594	**सहस्रनामस्तोत्रसंग्रह**
1850	**शतनामस्तोत्रसंग्रह**
715	**महामन्त्रराजस्तोत्रम्**

नामावलिसहितम्

कोड	पुस्तक
1599	**श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम्** (गुजराती भी)
1600	**श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्रम्**
1601	**श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रम्**
1663	**श्रीगायत्रीसहस्रनामस्तोत्रम्**
1664	**श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्रम्**
1665	**श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रम्**

कोड	पुस्तक
1706	श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्
1704	श्रीसीतासहस्रनामस्तोत्रम्
1705	श्रीरामसहस्रनामस्तोत्रम्
1707	श्रीलक्ष्मीसहस्रनामस्तोत्रम्
1708	श्रीराधिकासहस्रनामस्तोत्रम्
1709	श्रीगंगासहस्रनामस्तोत्रम्
1862	श्रीगोपाल स०-सटीक
1748	संतान-गोपालस्तोत्र
563	शिवमहिम्नःस्तोत्र [तेलुगु भी]
230	अमोघ शिवकवच
495	दत्तात्रेय-वज्रकवच सानुवाद [तेलुगु, मराठी भी]
229	श्रीनारायणकवच [ओड़िआ, तेलुगु भी]
1885	वैदिक-सूक्त-संग्रह
054	भजन-संग्रह
1849	भजन-सुधा
140	श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली
144	भजनामृत
142	चेतावनी-पद-संग्रह
1355	सचित्र-स्तुति-संग्रह
1800	पंचदेव-अथर्वशीर्ष-संग्रह
1214	मानस-स्तुति-संग्रह
1092	भागवत-स्तुति-संग्रह
1344	सचित्र-आरती-संग्रह
1591	आरती-संग्रह—मोटा टाइप
153	आरती-संग्रह
1845	प्रमुख आरतियाँ-पॉकेट
208	सीतारामभजन
221	हरेरामभजन— दो माला (गुटका)
222	हरेरामभजन—१४ माला
225	गजेन्द्रमोक्ष-सानुवाद, [तेलुगु, कन्नड़, ओड़िआ भी]
385	नारद-भक्ति-सूत्र एवं शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र, सानुवाद [बँगला, तमिल भी]
1505	भीष्मस्तवराज
699	गङ्गालहरी
1094	हनुमानचालीसा— हिन्दी भावार्थसहित
1917	,, मूल (रंगीन) वि०सं०
227	,, (पॉकेट साइज) [गुजराती, असमिया, तमिल, बँगला, तेलुगु, कन्नड, ओड़िआ भी]
695	हनुमानचालीसा—(लघु आकार) [गुजराती, अंग्रेजी, ओड़िआ, बँगला भी]
1525	हनुमानचालीसा—अति लघु आकार [गुजराती भी]
228	शिवचालीसा—असमिया भी
1185	शिवचालीसा-लघु आकार
851	दुर्गाचालीसा, विन्ध्येश्वरीचालीसा
1033	,, लघु आकार
232	श्रीरामगीता
383	भगवान् कृष्णकी कृपा तथा दिव्य प्रेमकी....
203	अपरोक्षानुभूति
139	नित्यकर्म-प्रयोग
524	ब्रह्मचर्य और संध्या-गायत्री
236	साधक-दैनन्दिनी
1471	संध्या, संध्या-गायत्रीका महत्त्व और ब्रह्मचर्य
210	सन्ध्योपासनविधि एवं तर्पण-बलिवैश्वदेवविधि— मन्त्रानुवादसहित [तेलुगु भी]
614	सन्ध्या